महावीर कर्ण

लेखक

साहित्य-रत्न

पण्डित रामनारायण चतुर्वेदी, एम० ए०

बी० एस सी०, एल० टी०

प्रोफेसर, गवर्नमेंट-इण्टर-मीडिएट कालेज, इटावा ।

प्रकाशक

विद्याभास्कर बुकडिपो,

बनारस सिटी ।

प्रकाशक

शैलेन्द्रचन्द्र वीरेन्द्रचन्द्र

विद्याभास्कर बुकडिपो,

बनारस सिटी।

मुद्रक

ना० र० वोरा,

श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, काशी

२०१ (ग)–३४
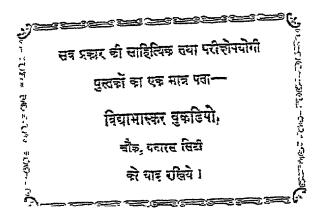
प्रस्तावना

द्वापर में महावीर कर्ण एक बड़े भारी पराक्रमी हो गए हैं। उन्होंने अपने पुरुषार्थ और तपस्या से धनुर्वेद का ऐसा अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था कि उनके समक्ष उस युग का कोई भी वीर नहीं ठहर सकता था। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उन्होंने अपना गृहीत बाना अपनी मृत्यु तक निबाहा। सूत जातिके अधिरथ ने उनका पालन-पोषण किया था, पर उन्होंने उस धर्म-पिता से पराङ्मुख होकर अपनी वास्तविक जाति का ज्ञान हो जाने पर भी, उनका त्याग नहीं किया। इसके लिये उन्हें बारंबार अपमानित होना पड़ा; किंतु उन्होंने इसकी चिंता कभी नहीं की। वे सूतपुत्र कहलाने से ही अपने को गौरवान्वित समझते रहे। दूसरी विशेषता उनमें कृतज्ञता की थी। सबसे पहले दुर्योधन ने उनका आदर किया। इस आदर के प्रति उन्हें जो कृतज्ञता प्रकाशित करनी चाहिए थी, उसे वे आजीवन नहीं भूले, अनेक प्रलोभनों और अनेक विपत्तियों के चक्र में पड़कर भी उन्होंने दुर्योधन की अहित-चिंता कभी स्वप्न में भी नहीं की।

वीर कर्ण केवल युद्ध-वीर ही नहीं थे, दान-वीर भी थे। भारत के दानियों की श्रेणी में उनका नाम बड़े सम्मान और आदर के साथ अब भी लिया जाता है। वे दानि-शिरोमणि थे—महादानी थे—अपने प्राणों का भी दान कर सकते थे। जिस दान के लिये वे प्रतिश्रुत हुए, प्राणों के कंठ-गत होने पर भी वे उससे विमुख नहीं हुए। उनकी इस दान-वीरता और दृढ़ता से

उनके प्रतिपक्षियों ने विशेष लाभ उठाया और इसी दृढ़ता के कारण उन्हें रण-भूमि में हत भी होना पड़ा। उनकी प्रतिज्ञा थी कि रण में एक बार छोड़े हुए अस्त्र का उपयोग हम दूसरी बार नहीं करेंगे। इस प्रण को उन्होंने शत्रु के मारने का अवसर पाकर भी नहीं छोड़ा।

यदि न्यायतः विचार किया जाय, तो द्वापर के विश्व-विश्रुत वीर अर्जुन से महावीर कर्ण प्रत्येक दृष्टि से प्रबल थे। अस्त्र-विद्या, कौशल और पराक्रम सब में उन्होंने यथावसर अपनी उच्चतर वीरता का प्रमाण दिया था। अर्जुन की प्रतिद्वंद्विता उन्हें तीन स्थानों पर विशेष रूप से करनी पड़ी थी। पहले अस्त्र-विद्या की निपुणता की परीक्षा देते समय आचार्य द्रोण के समक्ष ; वहाँ अर्जुन को द्वंद्व-युद्ध के लिये ललकारने पर वे अज्ञात-कुल शील कहकर रोके गए। दूसरे द्रौपदी-स्वयंवर के अवसर पर ; वहाँ भी उन्हें सूतपुत्र एवं असंभ्रांत-कुल का बताकर रोका गया। तीसरा अवसर महाभारत के युद्ध में आया। यहाँ श्रीकृष्ण की रण-नीति अथवा कूट-नीति ने उन्हें अर्जुन को पराजित कर सकने में समर्थ नहीं होने दिया। समर्थ होना क्या, इसी के परिणाम स्वरूप उन्हें वीरगति को भी प्राप्त होना पड़ा। यदि कहें तो कह सकते हैं कि अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु के साथ जिस अधर्म-नीति का प्रयोग हुआ था, एक प्रकार से वैसी ही नीति का प्रयोग कर्ण के प्रति भी किया गया। यदि धर्म-युद्ध ही होता रहता, श्रीकृष्ण ऐसे कूटनीतिज्ञ पांडवों का पक्ष न लेते, तो कर्ण ने भारत का इतिहास ही बदल दिया होता।

वीर कर्ण में आत्म-विश्वास भी बहुत था। जिस कृति में

आत्म-विश्वास नहीं होता, वह संसार में अपना कर्तृत्व ही क्या दिखला सकेगा? इसी आत्म-विश्वास के कारण उन्होंने महात्मा भीष्म और द्रोणाचार्यजी ऐसे कृतविद्यों को भी यथावसर फटकार दिया था। इन पूज्य महात्माओं की अनुकंपा कर्ण पर बहुत-कुछ इसलिए भी नहीं थी कि वे इन्हें सूतपुत्र ही समझते रहे। परशुरामजी की भाँति उन्होंने कभी यह विचारने का प्रयत्न नहीं किया कि ऐसा तेज, ऐसी प्रभविष्णुता एवं ऐसा अदम्योत्साह क्षत्रिय-रक्त का परिचायक है। यदि उन्हें यह ज्ञान कुछ पहले हो गया होता, तो संभव था कि अपने पक्ष के गुरुजनों द्वारा कर्णको बारंबार अपमानित न होना पड़ता।

हाँ, एक बात अवश्य विचारणीय है। कर्ण ने दुर्योधन ऐसे अधर्मी का पक्ष ग्रहण क्यों किया और पक्ष ग्रहण करके भी उसे सन्मार्ग पर क्यों नहीं लाए। इसका एक कारण तो यह था कि उन्होंने जब दुर्योधन का पक्ष, ग्रहण कर लिया, तो फिर चाहे वह न्याय-पक्ष हो, चाहे अन्याय-पक्ष, उसका त्याग भारतीय सभ्यता के अनुकूल नहीं पड़ता। दूसरा कारण था—पांडवों के पक्ष द्वारा उनका अनावश्यक अपमानित होना। उनकी वीरता का प्रमाण पाकर भी वे लोग उन्हें व्यर्थ ही अपमानित करते रहे। इसी अपमान ने उन्हें अर्जुन का प्रतिद्वन्द्वी बना दिया और इसीके प्रतिशोध के लिये वे प्रतिश्रुत भी हुए। क्षत्रिय अपमान नहीं सह सकते थे, कर्णने क्षत्रियत्वका सच्चा आदर्श सामने रक्खा था।

कर्ण में क्षत्रियों के सभी गुण थे। युद्ध-वीर और दान-वीर होने के अतिरिक्त वे धर्म-वीर भी थे। उन्होंने धनुर्वेद आदि की

जो कुछ योग्यता प्राप्त की थी, वह इस धर्म-वीरता के ही कारण। उन्हें अपनी इस धर्म-वीरता का गर्व था। यदि धार्मिक दृष्टि से विचार करें, तो उन्हें ब्राह्मण और परशुराम के शाप ने कुछ करने नहीं दिया—ठीक अवसर पर धोखा खाना पड़ा, अथवा दुर्योधन का घोर पाप या अत्याचार उन्हें ले डूबा।

कर्ण ऐसे आदर्श वीर का चरित संसार के लिए एक अनुकरणीय चरित है। उनकी दृढ़ता, उनकी कृतज्ञता और उनकी दान-वीरता—सीखने योग्य हैं, अभ्यास करने योग्य हैं। यदि न्याय की दृष्टि से विचार किया जाय, तो उनसे बढ़कर द्वापर में और दूसरा वीर कोई नहीं था, उनकी वीरता निश्चय उन अर्जुन से भी बढ़ी-चढ़ी थी, जो उस युग के सर्वोच्च वीर माने जाते हैं। दान-वीरता आदि गुण तो उनमें उनसे कहीं अधिक थे। भारत में क्या—संसार में कर्ण के ऐसा प्रतापी, पराक्रमी और दानी दूसरा नहीं हुआ। भारत उनके ऊपर गर्व कर सकता है।

अनुक्रमणिका

महावीर कर्ण

पहला परिच्छेद

कुंती का जन्म तथा बाल्यकाल

द्वापर युग की बात है। ब्रजमंडल में वृष्णिवंशी शूरसेन राज्य कर रहे थे। उनके फुफेरे भाई का नाम था कुंतिभोज। वे भी राजा थे। पर उनके कोई संतान न थी। इसलिये शूरसेन की कोई संतान गोद लेने की उनकी इच्छा हुई। राजा शूरसेन ने अपनी पहली संतान उन्हें देने का वचन दे दिया। थोड़े दिनों बाद उनके एक कन्या पैदा हुई, जिसका नाम पृथा रखा गया। पृथा रूप और गुण में अद्वितीय थी। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार शूरसेन ने उसे कुंतिभोज को दे दिया। बस, वह उन्हीं के यहाँ रहने और चंद्रमा की कला की तरह बढ़ने लगी। कुंतिराज के यहाँ पाली जाने के कारण उसका नाम कुंती प्रसिद्ध हो गया। यही कुंती हमारे चरितनायक कर्ण तथा प्रसिद्ध पांडव-बंधु युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन की माता थी।

कुंतीभोज बड़े धर्मात्मा थे। उनके यहाँ आए दिन बड़े-बड़े सिद्ध ऋषि-मुनि आया करते और सेवा-सत्कार प्राप्त करके उन्हें आशीर्वाद दे जाया करते थे। बचपन से ही कुंती ये बातें देखती रही थी। इसलिये जब वह बड़ी हुई, तो उसके हृदय में ब्राह्मणों के लिये बहुत श्रद्धा-भक्ति दिखाई पड़ी। उसके सभी काम धर्म के

अनुसार होते थे, जिससे कुंतिराज बहुत ही प्रसन्न रहते। उसका स्वभाव भी अत्यंत कोमल था। किसी पर क्रोध करना या किसी प्राणी को कष्ट पहुँचाना तो वह जानती ही न थी। दीन-दुःखियों को देखकर वह सब तरह से उनकी सहायता करती और उनके दुःख से दुखी होकर सहानुभूति के आँसू बहाती थी। अपने पालक पिता की इच्छा के विरुद्ध वह कभी कोई काम न करती थी। अतएव क्या परिजन और क्या पुरजन, क्या घर के और क्या बाहर के, सभी उसके ऊपर बहुत स्नेह करने लगे। नौकर-चाकरों का तो यह हाल था कि चाहे स्वयं कुंतिराज की आज्ञा वे लोग टाल देते, पर कुंती की आज्ञा उनके लिये ईश्वर की आज्ञा थी। उसकी सेवा में वे लोग प्राण तक देने को तैयार रहते थे। हर जगह और हर काम में कुंती की तारीफ ही सुनाई पड़ती थी—माताएँ अपनी कन्याओं के सामने उसी का नमूना रखती थीं।

दुर्वासा का आना

एक दिन कुंतिभोज के यहाँ एक बड़े प्रतापी और तपस्वी ब्राह्मण आए और बोले, "हे राजन्, आपकी धर्मशीलता की प्रशंसा सुनकर मैं आपके पास आया हूँ और कुछ दिन यहाँ रहकर भिक्षा से निर्वाह करना चाहता हूँ। लेकिन मेरी दो-एक शर्तें हैं, जो आपको माननी पड़ेंगी। आप या आपके कुटुंब का या आपका अनुचर कोई भी कभी मेरी इच्छा के प्रतिकूल कोई काम न करे। मैं जैसे चाहूँ वैसे रहूँ, मेरे किसी काम में बाधा न पड़े और न मेरे लिये कहीं आने-जाने की रोक-टोक ही हो।" यह सुनकर राजा ने विधिपूर्वक ब्राह्मण देवता की पूजा की

और हाथ जोड़कर निवेदन किया, "भगवन्, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। मेरे अहोभाग्य जो आपने आकर दर्शन दिए और यह घर पवित्र किया। आप प्रसन्नतापूर्वक यहाँ रहिए। सब काम आपके इच्छानुसार ही किए जायँगे और आपको कभी शिकायत का मौक़ा न मिलेगा। मेरी कन्या पृथा सेवा-सत्कार के काम में बहुत निपुण है, विदुषी और सुशीला है तथा अत्यंत कोमल और सरल स्वभाव की है। वह बचपन से ही गौ और ब्राह्मण की भक्ति करती आई है। इसलिये मैं आपकी सेवा का काम उसी के सुपुर्द करूँगा। मुझे पूरा विश्वास है कि वह आपको किसी तरह का भी कष्ट न होने देगी।"

यह कहकर कुंतिभोज ने पृथा को बुलवाया और उससे कहा, "पुत्री, ये महातेजस्वी ब्राह्मण हमारे घर में रहेंगे एवं इच्छानुसार जब और जहाँ चाहेंगे विचरण करेंगे। इनके लिये कहीं रोक-टोक न होगी और न इनकी इच्छा के विरुद्ध कभी कोई काम ही किया जायगा। कोई मनुष्य या स्त्री किसी तरह भी इनका निरादर या अपमान न करे और न इनकी सेवा में कोई भी त्रुटि होने दे। ये महात्मा बड़े तेजस्वी हैं और तुझे भी मैं जानता हूँ कि धर्म में तेरी रुचि है तथा साधु और ब्राह्मणों की तू विशेष भक्ति करती है। तू सब काम मेरी इच्छा और आज्ञा के अनुसार ही करती है, इससे मुझे पूरा विश्वास है कि इन महर्षि को अपनी सेवा से संतुष्ट कर सकेगी। ऐसा करने से तेरा, मेरा, मेरे कुल का—सभी का भला हो[illegible] नहीं तो ये महात्मा शाप देकर हम सबको भस्म कर [illegible]लिये बहुत ही सावधानी से इनकी सेवा करनी पड़ेगी[illegible]ली, "हे

पिता, आप जानते हैं कि मैं सदा नियम-व्रत करती हूँ और देवता तथा ब्राह्मण की नित्य सेवा करना मेरा धर्म है। आप मेरे शील-स्वभाव को भी जानते हैं। इसलिये आप निश्चिंत रहिए, मैं इन ब्राह्मण देवता की सेवा में कोई त्रुटि न होने दूँगी।" इतना कहकर कुंती चुप हो गई। तब राजा ने उन वेदपाठी ब्राह्मण से कहा, "हे ब्रह्मन्, यह कन्या आपकी सब सेवा करेगी; आपको जप, हवन आदि में सहायता देगी। लेकिन अगर अनजान में इससे कोई अपराध बन पड़े तो आप क्षमा करें, क्योंकि महाभाग ब्राह्मण लोग क्षमाशील होते हैं और यथा-शक्ति उत्साह से दी हुई पूजा को ग्रहण करते हैं।" वे बोले, "राजन्, आप कोई शंका न करें; जैसा आपने कहा है, वैसा ही होगा।"

तब राजा कुंतिभोज ने एक बहुत अच्छे और साफ़-सुथरे स्थान में उनका आसन लगवा दिया और यज्ञ, हवन आदि की सब सामग्री वहाँ रखवा दी। कुंती भी मनसा-वाचा-कर्मणा उनकी सेवा में दत्तचित्त हुई। राजा कुंतिभोज रोज़ संध्या-समय उससे पूछते, "वे महात्मा तेरी सेवा से संतुष्ट हैं या नहीं?" और रोज़ कुंती यही उत्तर देती, "हाँ पिताजी, संतुष्ट हैं।"

इस तरह से वे तेजस्वी ब्राह्मण, जिनका नाम दुर्वासा था, कुंतिभोज के यहाँ लगभग एक वर्ष रहे। इस बीच में उन्होंने तरह-तरह से कुंती की श्रद्धा-भक्ति की जाँच की। कभी तो वे संध्या-समय लौटने के लिये कहकर बाहर चले जाते और आधी-आधी रात को लौटकर आते। बेचारी पृथा भूख-प्यास रोककर और नींद को मारकर उनकी बाट देखती रहती। कभी वे बिना

कहं ही चले जाते और दो-दो तीन-तीन दिन लौटकर न आते। आते भी तो अचानक आ धमकते और कुंती से खाने-पीने आदि की ऐसी-ऐसी चीजें माँगने लगते, जिनका हर जगह और हर ऋतु में मिलना संभव नहीं। पर धन्य है कुंती को! उसने ऐसा अच्छा प्रबंध कर रखा था कि कभी किसी चीज के लिये उसे यह नहीं कहना पड़ा कि इस समय वह नहीं मिल सकती। कभी-कभी दुर्वासाजी उसकी सेवा में व्यर्थ के दोष निकालते और बिना अपराध ही उसको बुरा-भला कहते। लेकिन कुंती ने कभी धीरज न छोड़ा और न मन में तनिक भी मैल ही आने दिया, बल्कि वह और भी ज्यादा उत्साह से उनकी सेवा करने लगी। फल यह हुआ कि जब दुर्वासा वहाँ से चलने लगे तो उन्होंने कुंती को अपने पास बुलाकर बड़ी प्रसन्नता से कोई ऐसा वर माँगने के लिये कहा जो अन्य स्त्रियों को दुर्लभ हो।

कुंती बोली, "जब आप और पिताजी मेरी सेवा से संतुष्ट हैं, मुझपर प्रसन्न हैं, तो मुझे और क्या चाहिए?" इसपर दुर्वासा ने कहा, "अच्छा मैं तुझे एक ऐसा मंत्र बताता हूँ जिसकी सहायता से तू जिस देवता का स्मरण करेगी, वही सेवकों की भाँति तेरे सम्मुख आ जायगा और जो तू कहेगी वही करेगा।" कुंती को भय हुआ कि कहीं बार-बार मना करने से महर्षि को क्रोध न आ जाय और वे कोई शाप न दे दें। इसलिये जब तक वे उसको मंत्र देते रहे, वह चुपचाप मुँह नीचा किए खड़ी रही।

दुर्वासा का मंत्र देना

इसके बाद दुर्वासाजी राजा कुंतिभोज के पास गए और उनसे यह कहकर कि "मैं तुम्हारी पुत्री की सेवा से बहुत प्रसन्न

हूँ" एकदम अंतर्धान हो गए। राजा आश्चर्यचकित होकर यह कौतुक देखते रह गए। उस दिन से वे पृथा का बहुत आदर-सम्मान करने लगे और समझने लगे कि आगे चलकर वह बड़ी भाग्यशालिनी होगी।

थोड़े दिन यों ही कट गए। एक दिन कुंती के मन में यह बात आई कि दुर्वासा के बताए हुए मंत्र की परीक्षा करनी चाहिए। उस समय वह राजमहल के भीतर अपने कमरे में बैठी हुई थी—सूर्योदय हो रहा था और सूर्य भगवान् की उज्ज्वल किरणें खिड़की के रास्ते कमरे में आ रही थीं। कुंती सूर्य का तेज देखकर मुग्ध हो गई और सोचने लगी, "अगर मेरे भी ऐसा ही तेजवान पुत्र हो, तो संसार-भर की स्त्रियों में मेरा नाम हो और मैं बड़ी ही भाग्यशालिनी समझी जाऊँ।"

यह सोचकर उसने दुर्वासा के बताए हुए मंत्र का उच्चारण करके सूर्य भगवान् का ध्यान किया। तत्काल ही वे आकर उपस्थित हुए और बोले, "हे कल्याणी, तूने पुत्र की कामना से मेरा आह्वान किया है, इसलिये मेरे वरदान से तेरे एक बड़ा ही प्रतापी पुत्र पैदा होगा, जो तेज में मेरे समान होगा और जन्म से ही दिव्य कवच-कुंडल धारण किए होगा।" यह सुनकर पहले तो कुंती बहुत डरी और सूर्य से यह कहकर कि मंत्र की परीक्षा के लिये आपको कष्ट दिया गया, क्षमा माँगने लगी। पर जब सूर्य ने कहा, "हमारा वरदान मिथ्या नहीं हो सकता", तब वह शांत हुई।

यथासमय उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो गोरे रंग का और सूर्य के समान तेजवान था। उसके नेत्र शेर के जैसे और

कंधे वृषभ के कंधों की तरह थे। वह बड़े ही चमकीले, दिव्य कवच और कुंडल पहने हुए था। यह देखकर कुंती पहले तो बहुत प्रसन्न हुई और अपने सौभाग्य पर बड़ा घमंड करने लगी। पर दूसरे ही क्षण उसे ख्याल हुआ कि अगर पुत्र-जन्म की बात फैल गई तो उसकी और उसके कुल की बड़ी बदनामी होगी, दुर्वासा के दिए हुए मंत्र और सूर्य के वरदान पर कोई विश्वास न करेगा। अतएव वह इस सोच में पड़ गई कि क्या करना चाहिए।

अभी तक कुंती ने एक दासी को छोड़कर और किसी को यह भेद नहीं बताया था। इसलिये उसने उसी दासी को सलाह करने के लिये बुलाया। दासी की राय हुई कि बदनामी से बचने के लिये बालक को नदी में बहा देना चाहिए। पहले तो कुंती इसपर राजी न हुई, पर जब दासी ने सब ऊँच-नीच समझाया तो लाचार होकर उसे यह बात माननी पड़ी। निदान दासी की सहायता से एक संदूक मँगवाया गया और उसके भीतर बड़ा कोमल बिछौना लगाकर वह बालक लिटा दिया गया। इसके बाद संदूक बंद कर दिया गया और ऊपर एक ऐसा लेप लगा दिया गया जिससे पानी भीतर न जा सके। उस समय कुंती का हृदय फटा जा रहा था—मातृप्रेम उबल पड़ता था। तबियत चाहती थी कि उस चाँद के टुकड़े-जैसे पुत्र को कलेजे से लगाए रखे, दूर न करे। पर बदनामी के डर से ऐसी बेहरमी करनी पड़ी। अंत में बहुत रो-धोकर, बार-बार उसके सिर और माथे को सूँघकर, सैकड़ों देवी-देवता मनाकर कुंती ने उस जिगर के टुकड़े को अश्व नदी में बहा दिया और भगवान् से प्रार्थना

की कि वह कुशलपूर्वक ऐसी जगह पहुँच जाय जहाँ भली भाँति उसका पालन-पोषण हो सके।

संदूक वहते-वहते अश्व नदी से चर्मरवती में, चर्मण्वती से यमुना में, और यमुना से गंगा में पहुँचा। गंगा की लहरों पर तैरता हुआ धीरे-धीरे वह अंगदेश में सूतराज्य की चंपापुरी के निकट पहुँचा, जहाँ धृतराष्ट्र का सखा अधिरथ रहता था। उसकी स्त्री का नाम राधा था। राधा रूप और गुण में अद्वितीय मानी जाती थी, पर दुर्भाग्य से उसके कोई संतान न थी। एक पुत्र की प्राप्ति के लिये वह सैकड़ों प्रयत्न कर चुकी थी—अनेक देवी-देवता मना चुकी थी, पर सब व्यर्थ हुए थे—उसकी मनोकामना पूर्ण न हुई थी। होनहार की बात, जिस समय वह संदूक तैरता हुआ सूतराज्य में आया और लहरों के सहारे किनारे पर आ लगा, उस समय अधिरथ और राधा गंगा-तट पर विचरण कर रहे थे। संदूक को देखकर उन लोगों ने उसे पानी से निकाल लिया। उसके ऊपर दूब, अक्षत आदि मांगलिक वस्तुएँ तथा कुंकुम के थापे देखकर उन्हें बड़ा कौतूहल हुआ और उन्होंने फौरन ही औज़ार मँगवाकर उसे खोल डाला। ढक्कन खुलते ही देखते क्या हैं कि एक अति रूपवान बालक उसके भीतर लेटा हुआ है। वे दोनों आश्चर्य-सागर में डूब गए और आँखें फाड़-फाड़कर उस बालक को देखने लगे। कुछ देर बाद अधिरथ बोले—"देखो प्रिये, कैसा सुंदर बालक है। न जाने किस वज्रहृदय ने इसे यों बहा दिया है। अहा! इसकी आकृति कैसी तेजपूर्ण है! देखने से तृप्ति ही नहीं होती। और यह कवच एवं कुंडल तो

देखो ! मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है कि यह कोई देवकुमार है और भगवान् ने इसी के बहाने हम लोगों की साध पूरी की है। चलो परमात्मा को धन्यवाद दें और इस बालक का मुख देखकर अपना जन्म सफल करें।"

यह कहकर राधा और अधिरथ उस बालक को अपने घर ले गए और बड़े लाड़-चाव से उसका लालन-पालन करने लगे। दिन-भर उसकी मनोहर आकृति और ललित क्रीड़ाएँ देखते ही बीतता था। जब नामकरण का समय आया, तो यह देखकर कि वसु (कुंडल और कवच रूपी धन) के साथ ही उसका जन्म हुआ था, उन्होंने उसका नाम वसुसेन रखा। एक नाम उसका वृष भी था और कुछ लोग उसे सूतपुत्र भी कहते थे। यही वसुसेन आगे चलकर कर्ण के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

गुप्तचरों के द्वारा ये सब समाचार कुंती को मिले और वह यह जानकर बहुत प्रसन्न हुई कि उस बालक के पालन-पोषण में किसी बात की कमी न होगी। उसने परमात्मा को बहुत-बहुत धन्यवाद दिया। पर यह दुःख उसके हृदय में सालता ही रहा कि मैं स्वयं उस दिव्य बालक का लालन-पालन न कर सकी। खैर, उसने अपने उमड़ते हुए भावों को रोका और पुत्र की मंगल-कामना करके ही मन को ढाढ़स बँधाया।

बालक वसुसेन (कर्ण) बड़े सुख में पाला-पोसा गया। अधिरथ और राधा उसे आँखों की पुतली की भाँति रखते थे। उसकी कोई इच्छा हो, अवश्य पूरी की जाती थी। उसकी चपल बाल-क्रीड़ाएँ उन दोनों के मनोविनोद का कारण होती थीं। ज्यों-ज्यों उसकी आयु बढ़ती गई, अधिरथ और राधा की

प्रसन्नता भी अधिकाधिक होती गई। उन लोगों ने उसकी शिक्षा-दीक्षा का भी बहुत अच्छा प्रबंध कर रखा था और यह देख-कर वे फूले न समाते थे कि क्या वेद-शास्त्र के अध्ययन में और क्या अस्त्र-शस्त्र के चलाने में कर्ण अपने सभी साथियों से बढ़कर था। इस तरह कर्ण की बाल्यावस्था अंगदेश में व्यतीत हुई। जब वह कुछ सयाना हुआ, तो द्रोणाचार्य की तारीफ़ सुनकर अधिरथ ने उसे अस्त्र-विद्या सीखने के लिये हस्तिनापुर भेज दिया।

दूसरा परिच्छेद

इस समय हस्तिनापुर की राजगद्दी पर कुरुवंशी राजा धृतराष्ट्र विराजमान थे। वे जन्मांध थे और अपने भाई राजा पांडु के मरने पर राजगद्दी के मालिक हुए थे। उनके दुर्योधन, दुःशासन आदि सौ पुत्रों के सिवा दुःशाला नाम की एक कन्या भी थी, जो बड़ी होने पर सिंधु-नरेश जयद्रथ को व्याही गई थी। धृतराष्ट्र की संरक्षकता में राजा पांडु के पाँचो पुत्र युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव भी अपनी माता कुंती-सहित रहते थे। ये पाँचों भाई बड़े वीर, सच्चरित्र और धर्मात्मा थे। ये लोग धृतराष्ट्र के पुत्रों को खेल-कूद में बराबर हराया करते थे। इसलिये दुर्योधन के हृदय में बचपन ही से उनके लिये द्वेष उत्पन्न हो गया, जो बराबर बढ़ता ही गया। उसने कई बार इन लोगों के प्राण लेने की भी चेष्टा की, लेकिन 'जाको राखै साइयाँ, मारि सकै नहिं कोय' के अनुसार ये लोग हर बार उसकी घातों से बचते रहे।

कौरवों और पांडवों का बाल्यकाल

राजा धृतराष्ट्र के आश्रम में कृपाचार्य नाम के एक ब्राह्मण रहते थे। उनके कृपी नाम की एक बहिन थी, द्रोणाचार्य को व्याही गई थी। कृपाचार्य धृतराष्ट्र के पुत्रों और युधिष्ठिर आदि पाँचों पांडव-कुमारों को अस्त्र-विद्या सिखाया करते थे। जब वे लोग अस्त्र-शस्त्र चलाने की थोड़ी योग्यता प्राप्त कर चुके, तब उनके पितामह भीष्म उन्हें ऊँचे दरजे की शिक्षा देने के

लिये किसी ऐसे गुरु की खोज करने लगे जिसे अस्त्र-विद्या सांगोपांग आती हो, जो महापराक्रमी तथा बली हो और अस्त्र-विद्या में अपना सानी न रखता हो।

एक दिन कुरुवंशी राजकुमार इकट्ठे होकर गेंद खेलने के लिये नगर के बाहर गए। खेलते-खेलते उनका गेंद एक अंधे कुएँ में गिर पड़ा। अब तो वे बड़े व्याकुल हुए। उनका खेल ही बंद हो गया। गेंद कुएँ में से निकालने की उन बेचारों ने बहुत-सी तदबीरें कीं, पर निकाल न सके। इससे उन्हें बहुत दुःख हुआ और असमर्थता पर लज्जा भी मालूम पड़ी। निराश होकर वे एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। इतने में ही उन्होंने एक दुबले-पतले काले रंग के ब्राह्मण को सामने से जाते देखा। दौड़कर वे लोग उसके पास गए और प्रणाम करके पहले तो अपना परिचय दिया, फिर गेंद कुएँ में से निकाल देने की प्रार्थना की। उसने मुट्ठी-भर सींकें लेकर पहले एक सींक से गेंद को छेद दिया और फिर एक से दूसरी, दूसरी से तीसरी सींकों को छेदते हुए कुएँ के मुँह तक पहुँचा दिया। गेंद निकल आया। राजकुमार इस कौशल को बड़े आश्चर्य और विस्मय से आँखें फाड़-फाड़कर देखते रहे। गेंद पाकर वे लोग बहुत प्रसन्न हुए और उस ब्राह्मण से बोले,—"हे ब्राह्मण-श्रेष्ठ, आप कौन हैं? अस्त्र-विद्या में आप-जैसी योग्यता हमने अभी तक नहीं देखी थी। आज्ञा दीजिए कि इस उपकार के बदले में हम लोग आपकी सेवा करें।" उसने जवाब दिया—"तुम केवल महात्मा भीष्म से जाकर हमारा वृत्तांत कह दो। वे हमें पहचान लेंगे।"

राजकुमारों ने यह बात मान ली। वे दौड़ते हुए भीष्म-

पितामह के पास गए और सब हाल कह सुनाया। भीष्म फौरन समझ गए कि वह गुणवान ब्राह्मण द्रोणाचार्य के सिवा और कोई नहीं हो सकता और यह सोचकर वे अत्यंत प्रसन्न हुए कि द्रोणाचार्य फौरन राजकुमारों को धनुर्वेद की बहुत अच्छी शिक्षा दे सकेंगे। बड़े आदर और सम्मान के साथ उन्होंने द्रोणाचार्य को बुलवा भेजा और जब वे आ गए तो भीष्म ने उनका परिचय और हस्तिनापुर आने का कारण पूछा। वे बोले, "मैं महर्षि भरद्वाज का पुत्र हूँ। मेरा नाम द्रोण है। महर्षि अग्निवेश के आश्रम में मैं धनुर्वेद और अस्त्र-विद्या सीखने गया था। वहाँ पांचाल देश के राजकुमार द्रुपद भी उसी मतलब से आए हुए थे। धीरे-धीरे हम दोनों में गाढ़ी मित्रता हो गई। वे मुझसे बार-बार कहा करते, "पिता के मरने पर जब मुझे राज-गद्दी मिल जाय तो तुम मेरे यहाँ आना। हम-तुम मिलकर राज्य के सारे सुख और ऐश्वर्य भोग करेंगे।" द्रुपद की यह प्रतिज्ञा उनके चले जाने पर भी मुझे भूली नहीं। थोड़े दिनों बाद शिक्षा समाप्त होने पर मैंने भी उस आश्रम को छोड़ दिया और घर जाकर एक ब्याह कर लिया, जिससे मेरे अश्वत्थामा नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। हम लोग बहुत निर्धन थे। एक बार जब पेट की ज्वाला से अत्यंत दुखी हुआ तो मैं द्रुपद के पास गया और उन्हें पुरानी प्रतिज्ञा याद दिलाकर कुछ सहायता चाही। लेकिन उन्होंने मेरी दीन दशा पर कुछ भी ध्यान न दिया, उलटा यह कहकर अपमान और किया, "राजा और रंक में भी कहीं मित्रता हो सकती है ?" तब से मैं उन्हें अपना शत्रु समझने लगा हूँ और बदला लेने की फिक्र में स्त्री-पुत्र-सहित

यहाँ आया हूँ।" भीष्म बोले, "हे विप्र, हम लोगों के धन्य भाग्य जो आप यहाँ पधारे। अब सुख से रहिए।" यह सुनकर द्रोणाचार्य बहुत प्रसन्न हुए और वहीं रहकर बड़े प्रेम और उत्साह से कौरवों और पांडवों को अस्त्र-शस्त्र चलाने की शिक्षा देने लगे।

धीरे-धीरे उनकी प्रसिद्धि इतनी बढ़ गई कि दूर-दूर के देशों के राजकुमार भी धनुर्वेद की शिक्षा पाने के लिये उनके पास आने लगे। द्रोणाचार्यजी महर्षि परशुराम को प्रसन्न करके उनके पास जितने दिव्य अस्त्र-शस्त्र थे, सब प्राप्त कर चुके थे। वे सांगोपांग धनुर्वेद के ज्ञाता तथा अद्भुत पराक्रमी थे। जिस तरह के गुरु की भीष्मपितामह खोज कर रहे थे, द्रोणाचार्यजी ठीक वैसे ही थे। जिस दिन कौरव-राजकुमार पहले-पहल उनके पास गए, वे बोले, "हे शिष्यो, हम तुम्हें धनुर्वेद की बहुत उत्तम शिक्षा देंगे, पर तुम लोग इस बात की प्रतिज्ञा करो कि शिक्षा समाप्त होने पर गुरु-दक्षिणा के रूप में मेरा एक काम कर दोगे।" यह सुनकर और सब राजकुमार तो चुप रहे, पर अर्जुन ने बड़े उत्साह से हामी भर ली। आचार्य अर्जुन पर बहुत प्रसन्न हुए और दूसरे राजकुमारों के मुकाबले में उनकी शिक्षा की ओर अधिक ध्यान देने लगे। सूतपुत्र कर्ण भी उनके पास अस्त्र-विद्या सीखने के लिये भेजे गए थे और कौरव-राजकुमारों के साथ ही दिनरात रहते थे।

इस तरह बहुत दिनों तक शिक्षा का कार्य चलता रहा। तब तक भुजबल में, उद्योग में, धनुर्वेद की शिक्षा में—अर्जुन ने बड़ी अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। धीरे-धीरे वे स्वयं आचार्य-

प्यवशिष्टमित्यभिप्रेत्य क्लेशसाध्यमपि घृतपशुं प्रथमकल्पत्वेनोपदिष्टवान् । कुर्यात् घृतपशुं संग इति ॥

ननु कथं हृदयस्याग्रेऽवद्यत्यथ जिह्वाया अथ वक्षस इत्यादिशास्त्रानुष्ठानं, नहि तत्र हृदयजिह्वाद्यवयवविशेषोऽवगन्तुं शक्यत इति चेन्न । प्रतिकृतिविशेषनिर्माणप्रवीणैस्तत्तदंगेषु तथाविधजिह्वादिकमपि हि निर्मातुं शक्यम् । न च तथापि व्रीहियवमतीरपः पाययेदित्यादिनाऽऽम्नातस्य पानादेरशक्यानुष्ठानत्वमेवेति चेत् सत्यम् । चातुर्मास्ये मेषस्य मेष्याश्च पिष्टमयपशोरपि शमीपर्णकरीराद्युपवापवदुपपत्तेः । स्यादेतत् अग्नीषोमीयं पशुमालभेतेति प्रत्यक्षश्रुत्याऽऽम्नातस्य पशुत्वजात्याक्रान्तस्य स्मृतिबलात्कथमधिकारिविशेषे व्यवस्थापनं युक्तं । सिद्धे त्वस्मिन्मूले तद्बलात्सर्वापि कल्पना सुवचा । तदेव तु न संभवति स्मृतेः श्रुत्यपेक्षया दुर्बलत्वात् तदनुरोधेन श्रुतिसंकोचस्याऽन्याय्यत्वात् । अन्यथा औदुम्बरीं स्पृष्ट्वोद्गायति इति श्रुतेः सर्वा वा औदुम्बरी वेष्टयितव्येति सर्ववेष्टनस्मृत्या संकोचापत्त्या विरोधे त्वनपेक्षं स्यादसति ह्यनुमानमिति स्मृतिचरणे जैमिनीयं न्यायव्युत्पादनमसंगतमापद्येतेति ।

अत्रोच्यते—स्मृतीनां श्रुतितात्पर्यनिर्णयार्थमेव प्रवृत्तत्वेन तद्बलात्तदर्थाध्यवसायस्यावश्यकत्वात् । तदुक्तमत्रैव मनुना—

> इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।
> बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रतरिष्यति ॥ इति

अत एवोत्तरमीमांसायां वेदार्थनिर्णयाय प्रवृत्तः सर्वज्ञचूडामणिर्बादरायणोऽपि भगवान् बहुशः स्मृतेश्च इत्यादिसूत्रैः स्वोक्तार्थे स्मृतिं संमतित्वेनोदाजहार । ननु पौरुषेयवाक्यबलादपौरुषेयस्य बाधनीयतेति चेत् भ्रांतोऽसि । न हि वयं पश्वालंभनवाक्यं बाधितार्थमिति वदामः । किन्तु युगविशेषपरं वा पुरुषविशेषपरं वेत्येतावत् । अत एवोक्तं तत्रैव मनुना—

> चतुष्पात्सकलो धर्मः सत्यं चैव कृते युगे ।
> नाऽधर्मेणाऽऽगमः कश्चिन्मनुष्यानुपवर्तते ॥
> इतरेष्वागमाद्धर्मः पादशस्त्ववरोपितः ।
> चौरिकानृतमायाभिर्धर्मश्चापैति पादशः ॥

धृतराष्ट्र बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने तत्काल ही विदुर को एक रंगभूमि बनवाने की आज्ञा दी। विदुर ने बिना तनिक भी विलंब किए यह काम शुरू करवा दिया। थोड़े दिनों में एक बहुत उत्तम और विशाल रंगभूमि बनकर तैयार हो गई और अस्त्र-परीक्षा का दिन भी नियत कर दिया गया।

जब वह दिन आया, तो राजा धृतराष्ट्र मंत्रियों को साथ लेकर और भीष्म तथा कृपाचार्य को आगे किए हुए उस रंग-भूमि में पहुँचे। वहाँ की शोभा का क्या कहना! चारों ओर मोतियों की मालाएँ टँगी थीं, जगह-जगह हीरा, नीलम, पुखराज आदि मणियाँ जड़ी हुई थीं, सुंदर-सुंदर सोने-चाँदी के सिंहासन रखे हुए थे, तरह-तरह के वंदनवार और फूल-मालाएँ लटक रही थीं, ऊँची-ऊँची पताकाएँ उड़ रही थीं। धृतराष्ट्र आदि जाकर सिंहासनों पर बैठ गए। उनके पीछे-पीछे गांधारी, कुंती तथा राजपरिवार की दूसरी स्त्रियाँ भी अपनी-अपनी दासियों को लिए हुए वहाँ पहुँचीं और सुंदर आसनों पर बैठ गईं। अगणित नगर-निवासी—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, छोटे और बड़े—राजकुमारों के करतब देखने के लिये वहाँ गए। थोड़ी देर में उस जगह पर एक बड़ा भारी जमाव हो गया। ऐसा मालूम पड़ता था, मानों कोई महासागर उमड़ पड़ा हो।

थोड़ी देर में सफ़ेद पोशाक पहने हुए द्रोणाचार्यजी भी वहाँ पधारे। उनकी शोभा निराली ही थी। सिर के बाल और दाढ़ी-मूँछ सब सफ़ेद थे, सफ़ेद चंदन लगा हुआ था। सफ़ेद ही फूलों की माला गले में पड़ी थी और जनेऊ भी सफ़ेद ही था। साथ में उनके पुत्र अश्वत्थामा थे। वहाँ आकर उन्होंने शुभ मुहूर्त में

ब्राह्मणों द्वारा मंत्र-पाठ-सहित स्वस्त्ययन करवाया और राजकुमारों को अखाड़े में उतारकर अपने-अपने करतब दिखाने की आज्ञा दी। वे लोग भी धनुष-बाण लिए, कमर कसे, दस्ताने पहने वहाँ उपस्थित हुए और आचार्य को प्रणाम करके अपने-अपने खेल दिखाने लगे। दर्शकों में से बहुतों ने डर के मारे आँखें बंद कर लीं या सिर झुका लिए। कुछ लोग भीड़ के पीछे जाकर खड़े हो गए।

सबसे पहले राजकुमारों ने तरह-तरह के अस्त्र-शस्त्र चलाकर अपनी-अपनी योग्यता प्रकट की। तलवार, भाला, गदा, परशु आदि के ऐसे-ऐसे हाथ दिखाए कि दर्शकों के मुँह से 'धन्य है' और 'शाबाश' की झड़ी-सी लग गई। फिर घोड़े की सवारी का नंबर आया। दौड़ते हुए घोड़े की पीठ पर से बाण चलाकर हिलते हुए निशाने को गिरा देना बड़ा ही अद्भुत था। उसके बाद कभी हाथियों पर बैठकर और कभी रथों पर सवार होकर नक़ली युद्ध किया गया। फिर भीमसेन और दुर्योधन का गदा-युद्ध हुआ। मस्त हाथियों की तरह झूमते हुए दोनों अखाड़े में उतर पड़े और पैतरे बदल-बदलकर एक-दूसरे के वार बचाने तथा अपनी चोट करने लगे। गदाओं के आपस में लड़ने से ऐसा शब्द होता था, मानों बड़े जोर से बिजली कड़क रही हो। उनमें से आग की चिनगारियाँ निकल रही थीं। दोनों में वैरभाव तो था ही, धीरे-धीरे युद्ध ने भयंकर रूप धारण कर लिया। नक़ली की जगह असली युद्ध होने लगा। दर्शकों में से कुछ 'जय कुरुराज दुर्योधन की' और कुछ 'जय पांडुसुत भीमसेन की' कहकर चिल्लाने लगे। यह देख द्रोणाचार्य ने सोचा कि

बात बढ़ जाने से कहीं दोनों कुमारों के तरफ़दार भी न बिगड़ उठें। इसलिये उन्होंने तुरंत अश्वत्थामा को अखाड़े में भेजकर उस युद्ध को बंद करवा दिया।

इसके बाद उन्होंने अर्जुन को बुलाया और सब दर्शकों के सामने उनकी बहुत तारीफ़ करके अपने करतब दिखाने की आज्ञा दी। उस समय अर्जुन सुनहला कवच पहने, धनुष लिए और बाणों से भरे तरकस बाँधे हुए थे। उन्हें देखकर सब लोग प्रसन्न हो उठे और आपस में उनकी बड़ाई करने लगे। चारों ओर से शंख, तुरही, नगाड़े आदि बाजे बजने लगे। कुंती का हृदय आनंद से भर गया और उसकी आँखों में हर्ष के आँसू आ गए। थोड़ी देर में जब कोलाहल बंद हुआ, तब अर्जुन ने अपना अस्त्र-कौशल दिखाना शुरू किया। पहले उन्होंने आग्नेय अस्त्र से आग पैदा की, फिर वरुणास्त्र से जल उत्पन्न करके उसे बुझा दिया। वायव्यास्त्र से हवा चलाकर पर्जन्यास्त्र से बादल प्रकट कर दिए। फिर अंतर्धान-अस्त्र का प्रयोग करके आप छिप गए। इसके बाद लोगों ने देखा कि वे अभी रथ पर से बाण चला रहे हैं, दूसरे ही क्षण पृथ्वी पर दिखाई पड़े, फिर दम-भर में घोड़े की पीठ पर और उसके बाद पलक मारते हाथी के ऊपर से बाण-वर्षा करने लगे। वे इस सफ़ाई से बाण चलाते थे कि मालूम ही नहीं पड़ता था कि कब तरकस में से बाण निकाला, कब धनुष पर रखा और कब छोड़ा। लोग विस्मय से आँखें फाड़-फाड़कर ये जौहर देखते रहे। इसके बाद उन्होंने धनुष तो रख दिया और तलवार-युद्ध तथा गदा-युद्ध के बड़े बाँके-बाँके हाथ दिखाए। दर्शकों का यह हाल था कि हर्ष

और विस्मय के मारे उनके मुँह से 'धन्य है' और 'शाबाश' निकलना भी बंद हो गया था। द्रोणाचार्य भी अपने सबसे प्यारे शिष्य की ऐसी योग्यता देखकर अपने को धन्य समझ रहे थे और हर्ष से गद्गद् हो रहे थे। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस अस्त्र-परीक्षा में पांडव लोगों ने कौरवों से बढ़कर योग्यता दिखलाई।

जब ये अद्भुत घटनाएँ हो चुकीं और सभा-भंग होने का समय आया तो बाजा बजना बंद हुआ और दर्शक लोग अपने-अपने घर जाने की तैयारी करने लगे। इतने में ही रंग-भूमि के फाटक पर कुछ गोलमाल सुनाई दिया और साथ ही किसी वीर के खम ठोकने की आवाज़ आई। सब लोग विस्मय में आकर उधर देखने लगे। द्रोणाचार्य उस समय पांडवों के बीच में खड़े थे। उनकी दृष्टि भी उसी तरफ़ गई। जो दिव्य कवच और कुंडल लेकर सूतपुत्र वीरवर कर्ण पैदा हुए थे, उन्हीं को धारण किए हुए वे रंगभूमि में आ खड़े हुए। उनकी कमर में जड़ाऊ मूठ की तलवार लटक रही थी, हाथ में धनुष था और पीठ पर बाणों से भरा हुआ तरकस बँधा था। बड़े गर्व से उन्होंने इधर-उधर देखा और अर्जुन की ओर मुँह करके कहने लगे—"तुम अपने मन में समझते होगे कि जितने हुनर तुम जानते हो, उतने और कोई नहीं जानता। लेकिन यह बात नहीं। मैं भी वे सब काम कर सकता हूँ जो तुमने किए हैं।" कर्ण की ये बातें सुनकर दुर्योधन को बड़ी प्रसन्नता हुई, क्योंकि इतनी देर से अर्जुन की जो तारीफ़ हो रही थी वह उससे सहन नहीं होती थी। इस समय वह सोचने लगा—"चलो, मेरे शत्रु

अर्जुन का घमंड अब चूर हो जायगा।" लेकिन अर्जुन को सब लोगों के सामने कर्ण के ये वचन सुनकर बड़ी लज्जा मालूम हुई और साथ ही क्रोध भी हो आया।

पर कर्ण ने कोरी डींग ही नहीं हाँकी थी। उन्होंने जो कहा था सो कर दिखाया—जो-जो करतब अर्जुन ने दिखाए थे, वे उन्होंने भी उतने ही अच्छे ढंग से कर दिखाए। दर्शक लोग बड़े आश्चर्य में आ गए, क्योंकि अब तक उनका ख्याल था कि अर्जुन की बराबरी कोई नहीं कर सकता और लोग तो चुप रहे, पर दुर्योधन से रहा न गया। वह मारे आनंद के फूल उठा और कर्ण को गले लगाकर कहने लगा—"हे वीर, तुम्हारे अद्भुत काम देखकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ।" कर्ण बोले—"मैं समझता हूँ कि मैंने वे सभी काम कर दिखाए हैं जो अर्जुन ने किए थे। अब इनके साथ द्वंद्व-युद्ध करके मैं इस बात की परीक्षा करना चाहता हूँ कि हम दोनों में कौन बढ़कर है।" कर्ण को इस तरह दून की हाँकते देखकर वीर अर्जुन क्रोध से जल उठे। उनका चेहरा लाल हो गया। बड़े जोर से चिल्लाकर वे कहने लगे—"रे रथ हाँकनेवाले के पुत्र, जो लोग बिना बुलाए ही सभा में आते हैं और बिना पूछे ही व्यर्थ प्रलाप करने लगते हैं, उन्हें जिस लोक को जाना चाहिए, आज मैं तुझे उसी लोक का रास्ता दिखाऊँगा।" कर्ण ने उत्तर दिया—"हे अर्जुन इस रंगभूमि में आने का अधिकार हर एक योद्धा को है—बुलाने की कोई जरूरत नहीं. और न तुम्हें इतना अधिकार ही है कि किसी को बुला सको या निकाल सको। खैर, कुछ भी हो जब तक मैं सब लोगों के सामने तुम्हारा सिर धड़ से जुदा

नहीं करता—तब तक मैं तुम्हारे मुँह लगना नहीं चाहता।"

कर्ण के ये वचन सुनकर अर्जुन गुरु द्रोणाचार्य की आज्ञा लेकर और भाइयों द्वारा उत्तेजित किए जाने पर युद्ध के लिये रंगभूमि में उतर आए। उधर कर्ण को भी दुर्योधन आदि ने गले लगाया और खूब ही बढ़ावा दिया। वे भी झटपट अर्जुन के सामने आकर खड़े हो गए। उस समय वहाँ पर जितने लोग एकत्र थे—मन-ही-मन दो दलों में बँट गए—किसी ने अर्जुन का पक्ष लिया—किसी ने कर्ण का।

कुंती ने जब देखा कि उसके दो पुत्र आपस में बड़ा भयंकर युद्ध करने पर उतारू हैं, न जाने क्या फल हो—तो वह सोचने लगी कि क्या करना चाहिए। पर युद्ध रोकने का एक भी उपाय उसकी समझ में न आया। मारे दुःख और चिंता के वह अचेत होकर गिर पड़ी। कृपाचार्य बड़े समझदार थे। उन्होंने उस अनर्थ को रोकने के विचार से कर्ण से कहा—"हे वसुसेन—जिसके कुल-शील का कुछ भी पता नहीं—उसके साथ राजकुमारों का द्वंद्व-युद्ध करना मना है। अनजान आदमी से राजकुमार नहीं लड़ते। सब लोग यही जानते हैं कि एक सारथी ने तुम्हारा पालन-पोषण किया है। भला कहीं सारथी का पुत्र एक राजकुमार के साथ लड़ने का हौसला कर सकता है? अगर तुम अपने माता-पिता का नाम लेकर यह बतलाओ कि किस राजवंश में तुम्हारा जन्म हुआ है, तो पांडु-पुत्र अर्जुन बेखटके तुम्हारे साथ युद्ध कर सकते हैं। फिर कोई बाधा न रह जायगी।"

कृपाचार्य की यह मतलब-भरी बात सुनकर कर्ण को बड़ी

लज्जा मालूम हुई। उन्हें अपने कुल-शील का पता तो था ही नहीं, बतलाते क्या? सिर झुकाकर चुप हो रहे। पर दुर्योधन से यह बात न देखी गई। वे कहने लगे—"हे आचार्य, हमारी समझ में तो वीर के साथ कोई भी वीर युद्ध करने का अधिकारी हो सकता है। जाति-पाँति का विचार व्यर्थ है। लेकिन अगर अर्जुन एक राजा के सिवा और किसी से युद्ध नहीं करना चाहते—तो मैं इसी क्षण वसुसेन को अंगदेश का राजा बनाता हूँ।" यह कहकर दुर्योधन ने तत्काल एक सोने का सिंहासन मँगाकर कर्ण को उसपर बिठाया और विद्वान् ब्राह्मणों को बुलाकर मंत्र-पाठ-सहित उनके सिंहासन पर बैठने की रीति पूरी की।

इस प्रकार दुर्योधन की कृपा से वसुसेन शास्त्र की विधि से अंगदेश के राजा हो गए। घोर अपमान से उनकी रक्षा हुई—मान-मर्यादा रह गई। इससे उन्होंने दुर्योधन का बड़ा अहसान माना—उनके बहुत कृतज्ञ हुए और बोले—"हे महाराज, आपने हमें राजा बना दिया। इस उपकार का बदला देना हमारी शक्ति के बाहर है। फिर भी जहाँ तक हो सकेगा, हम जन्म-भर आपकी आज्ञा पालन करने के लिये तैयार रहेंगे।" दुर्योधन बोले, "हे अंगराज, इस समय हम आपसे मित्रता जोड़ना चाहते हैं। बस, यही हमारी इच्छा है, और कुछ नहीं।" कर्ण ने कहा—"तथास्तु। जो कुछ आपने आज्ञा की—हमें स्वीकार है। जब तक शरीर में प्राण हैं—हम आपके मित्र रहेंगे—एक क्षण-भर के लिये भी हम इस प्रतिज्ञा के विपरीत काम न करेंगे।"

इसी बीच में किसी ने राजसारथि अधिरथ से जाकर कहा

कि अर्जुन और कर्ण में घोर विवाद हो रहा है। यह सुनकर उन्हें बड़ी चिंता हुई, क्योंकि अर्जुन की वीरता की प्रशंसा वे सुन चुके थे। निदान कर्ण की कुशल मनाते हुए और युद्ध रोकने की इच्छा से वे दौड़ते हुए रंगभूमि में आए। वृद्धावस्था के कारण उनका सारा शरीर पसीने से भींग रहा था, वस्त्र अस्त-व्यस्त हो रहे थे, दुपट्टा कहीं रास्ते में ही गिर पड़ा था। ऐसी व्याकुल दशा में उन्होंने रंगभूमि में प्रवेश किया। महाबली कर्ण यद्यपि उस समय क्रोध में अंधे हो रहे थे, पर (पालक) पिता के सामने ऐसा करना ढिठाई समझकर वे अपने क्रोध को पी गए और उनकी मर्यादा रखने के लिये धनुष को फेंककर सारे सभासदों के सामने उन्हें प्रणाम किया। अधिरथ ने जब देखा कि कर्ण [illegible] या चोट का निशान नहीं, तो उन्हें [illegible] जान में जान आई, और वे बार-ब[illegible] कहकर अपना प्रेम प्रकट करने लगे। साथ [illegible] के अभिषेक के कारण गीले सिर पर हर्ष [illegible]गिराकर उन्होंने उसे और भी गीला कर दिया।

भीमसेन ने जब दे[illegible]धिरथ कर्ण को अपना पुत्र कह रहे हैं, तो उनसे न[illegible] और वे कर्ण से बोले—"हमने आशा की थी कि [illegible]र्जुन के समान वीर के हाथों तुम्हें प्राण छोड़ने का सौभ[illegible]गा और तुम सीधे स्वर्ग जाओगे, पर हमारी यह [illegible] होती नहीं दिखाई पड़ती। कुत्ता जैसे यज्ञ का ह[illegible]ने के योग्य नहीं समझा जाता, उसी तरह अंगदेश [illegible] तुम्हें भी शोभा

नहीं देता। तुम्हारे कुल में जो घोड़ों की रास थामने का पेशा होता आया है, वही तुम्हारे लिये भी अच्छा होगा।"

भीम के ऐसे कठोर वचन सुनकर कर्ण क्रोध से अधीर हो उठे। उनके ओंठ फड़कने लगे, मुँह तमतमा उठा। बड़े कष्ट से उन्होंने अपने को सँभाला। पर दुर्योधन से भीम की बातें न सही गईं। उन्हें बेतरह क्रोध हो आया और मस्त हाथी की तरह खड़े होकर वे भीमसेन से कहने लगे—"हे भीम, यह शिष्टाचारहीन बात तुम्हें अपने मुँह से न निकालनी चाहिए थी। क्षत्रियों में बल ही देखा जाता है—अधिक बली ही श्रेष्ठ माना जाता है। जो अपनी भुजाओं में सारी पृथ्वी जीतने की शक्ति रखता है, उसके लिये अंगदेश का राज्य चीज़ ही क्या है? वसुसेन दिव्य कवच और कुंडल समेत पैदा हुए हैं। इससे निश्चय ही उनका जन्म किसी साधारण वंश में नहीं हुआ। कुछ भी हो, अंगदेश का राज्य पाने के विषय में जो उनसे द्वेष रखता हो, वह सामने निकल आवे—हम उससे युद्ध करने को तैयार हैं।" इस बात को सुनकर चारों ओर से 'धन्य, धन्य' की आवाज आई। पर इस समय सूर्यास्त हो गया था, इससे अस्त्र-परीक्षा का काम बंद कर दिया गया। दुर्योधन ने कर्ण का हाथ पकड़कर रंगभूमि से प्रस्थान किया। सभा भंग हो गई। पुरवासी लोगों में से कोई अर्जुन की, कोई कर्ण की और कोई दुर्योधन की प्रशंसा करते हुए सब अपने-अपने घर गए।

तीसरा परिच्छेद

अर्जुन की बराबरी करनेवाले उन्हीं के समान वीर कर्ण को मित्र बनाकर दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुए। लेकिन बुद्धिमान् युधिष्ठिर कर्ण की अद्वितीय वीरता को देखकर अर्जुन के लिये तरह-तरह की शंकाएँ करने लगे। अपने जन्म के शत्रु दुर्योधन और कर्ण में ऐसी गहरी मित्रता देखकर उनकी चिंता और भी बढ़ गई। उधर कर्ण को भी अर्जुन की ओर से बराबर शंका बनी रहती थी, और वे हमेशा वीरता में अर्जुन से आगे बढ़ जाने की कोशिश में लगे रहते थे।

अस्त्र-विद्या की शिक्षा और शाप

एक दिन उन्होंने गुरु द्रोणाचार्य को प्रसन्न देखकर बड़ी नम्रता के साथ उनसे ब्रह्मास्त्र सीखने की इच्छा प्रकट की। चतुर आचार्य फौरन समझ गए कि उनके प्रियतम शिष्य अर्जुन को मारने की नियत से ब्रह्मास्त्र माँगा जा रहा है इसलिये उन्होंने कर्ण को जवाब दिया कि सिवा ब्राह्मण या तपस्वी क्षत्रिय के, और किसी को ब्रह्मास्त्र पाने का अधिकार नहीं। कर्ण को यह बात बहुत बुरी लगी, पर करते क्या? निदान उन्होंने मह परशुराम के पास जाकर अस्त्र-विद्या सीखने का निश्चय कि और एक दिन वहाँ जा पहुँचे। परशुरामजी से उन्होंने को भार्गव ब्राह्मण बतलाया और बड़ी विनय के साथ अस्त्र-विद्या सीखने की इच्छा प्रकट की। परशुरामजी ने ब्राह्मण जानकर अपने पास रख लिया और बड़े प्रेम

शस्त्र की शिक्षा देने लगे। थोड़े ही समय में कर्ण ने धनुर्वेद की सब बातें सांगोपांग सीख लीं। उनके शील-स्वभाव और अध्यवसाय से परशुरामजी इतने प्रसन्न हुए कि जो-जो दिव्यास्त्र उनके पास थे या उन्हें मालूम थे वे सब उन्होंने प्रयोग-सहित कर्ण को बतला दिए। कर्ण पर उनका पूर्ण विश्वास था। कर्ण की धीरता, वीरता और तपस्या ने उन्हें मुग्ध कर लिया था।

एक दिन शिकार खेलते-खेलते कर्ण ने अचानक एक ब्राह्मण की गाय को हिरन समझकर उसपर बाण चला दिया। बाण लगने से वह गाय मर गई। अब तो कर्ण को काटो तो लोहू नहीं, क्योंकि वे जानते थे कि ब्रह्म-शाप बड़ा ही भयंकर होता है। उन्होंने उस ब्राह्मण की बहुत प्रार्थना की, एक गौ के बदले में उसे हजारों बढ़िया-से-बढ़िया गौएँ देने को तैयार हुए, बेशुमार धन-दौलत, सैकड़ों गाँव, दास-दासियाँ आदि देने लगे, पर ब्राह्मण देवता इन बातों में न आए तो नहीं ही आए। उन्होंने कर्ण को शाप दिया—"रे पापी, जिसके मारने के लिये तू यह अस्त्र-विद्या सीख रहा है, उससे लड़ते समय तेरे रथ का पहिया पृथ्वी में धँस जायगा।" यह शाप सुनकर कर्ण बहुत दुःखी हुए और परशुरामजी के आश्रम को लौटकर बड़ी तत्परता कण युद्ध-विद्या सीखने लगे।

हो.ग एक दिन परशुरामजी किसी आवश्यक काम के लिये आश्रम और ाल दिए। कर्ण भी साथ में थे। चलते-चलते ये लोग एक घर ़णएमणीक स्थान में पहुँचे, जहाँ भाँति-भाँति के रंग-बिरंगे फूल ़र-सुंदर वृक्षों में लगे हुए अपनी सुगंधि चारों ओर फैला तरह-तरह के पक्षी मीठी-मीठी बोलियाँ बोलकर मन

को मोह रहे थे। पृथ्वी पर हरे रंग की मखमल के फर्श के समान कोमल घास उगी हुई थी और मंद-मंद वायु वहाँ के जीवों को आनंद दे रही थी। थके हुए होने के कारण परशुरामजी को नींद ने आ घेरा और वे एक घने वृक्ष की शीतल छाया में कर्ण की जाँघ पर सिर रखकर सो गए।

इतने में क्या हुआ कि एक बड़ा भयंकर कीड़ा आकर कर्ण की जाँघ में लिपट गया और काटने लगा। कर्ण को बेहद पीड़ा हुई और काटे हुए स्थान से लोहू की धार बह निकली। लेकिन वाह रे वीर! मुँह से उफ़ तक न की, और यह सोचकर कि कहीं गुरुजी महाराज की कच्ची नींद न टूट जाय, वे तनिक भी हिले तक नहीं, चुपचाप ओंठ को दाँतों से दबाकर मूर्ति की तरह अचल भाव से बैठे रहे। लोहू बहते-बहते परशुरामजी की पीठ से लगा और उसके गरम स्पर्श से उनकी नींद खुल गई। वे चौंककर उठ बैठे। देखते क्या हैं कि आस-पास की सारी पृथ्वी लाल हो रही है और कर्ण की जाँघ से रुधिर बह रहा है। पूछने पर सब भेद खुला। परशुराम कर्ण की सहनशीलता और धीरज देखकर चकित हो गए और कहने लगे, "धन्य है तुझे। पर सचसच बता तू कौन है? ब्राह्मण तो तू कदापि नहीं, क्योंकि ब्राह्मणों में इतना धीरज असंभव है। मालूम होता है कि तू कोई क्षत्रिय है और धोखा देकर मुझसे अस्त्र-विद्या सीख रहा है।" यह सुनते ही कर्ण हाथ जोड़कर उनके पैरों में गिर पड़े और क्षमा की प्रार्थना करने लगे। वे बोले, "भगवन्, मैं सचमुच क्षत्रिय हूँ और अपने जन्म के शत्रु अर्जुन को मारने की शक्ति प्राप्त करने के लिये आपकी सेवा करने लगा

था। इसके सिवा मुझे और कोई उपाय नहीं सूझा, जिससे मैं अर्जुन से बढ़कर हो जाऊँ। अगर मैं अपना ठीक-ठीक परिचय पहले दे देता तो आप शायद ही इतने प्रेम से मुझे शिक्षा देते। आपकी कृपा से अब मैं सब तरह समर्थ हो गया हूँ और देवराज इंद्र तक से लोहा लेने का हौसला रखता हूँ। मैंने आपसे जो झूठ कहा, सो केवल विद्या प्राप्त करने के लिये। आप ब्राह्मण हैं, महर्षि हैं, मुझे क्षमा कीजिए।"

परशुरामजी कर्ण की इस प्रकार की वाणी सुनकर अत्यंत प्रसन्न हुए और अपने क्रोध को बहुत-कुछ रोकते हुए बोले, "दोष तो तेरा भारी है, पर मैं दंड थोड़ा ही देता हूँ। मैं शाप देता हूँ कि जिस शत्रु के मारने के लिये तू मुझसे झूठ बोला है, उसे मारने के समय तुझे यह सब विद्या भूल जायगी। पर वैसे तू धनुर्धारियों में अद्वितीय होगा। संसार में ऐसा कोई वीर नहीं जो तुझे हरा सके।" यह सुनकर कर्ण ने परशुरामजी से शाप फेर लेने के लिये बहुत अनुनय-विनय की, पर उन्होंने एक न सुनी। निदान बहुत पछताते हुए वे वहाँ से चल दिए और हस्तिनापुर में आकर फिर से द्रोणाचार्य के पास अस्त्र-शस्त्र का अभ्यास करने लगे। वे परशुरामजी के पास गए तो थे अर्जुन से अधिक योग्यता प्राप्त करने, पर लौटे वहाँ से दो-दो शाप लेकर। फिर भी उनके हस्तिनापुर आ जाने से दुर्योधन को बड़ी प्रसन्नता हुई और उनके मन में यह निश्चय हो गया कि कर्ण की सहायता से हम सहज ही में अपने शत्रु पांडवों को नीचा दिखा सकेंगे।

थोड़े दिनों में हस्तिनापुर में समाचार आया कि कलिंग देश

के राजा चित्रांगद की कन्या का स्वयंवर है। अनेकानेक देशों के राजा वहाँ गए। कर्ण के साथ दुर्योधन भी वहाँ पधारे। जब स्वयंवर का समय हुआ तो राजकन्या हाथ में जयमाल लिए हुए अपनी सखी-सहेलियों के साथ सभा-भवन में आई, जहाँ विवाह के इच्छुक राजा लोग पंक्तिबद्ध बैठे थे। वह एक-एक के सामने आती गई और उनको देखकर तथा उनका परिचय और कीर्ति सुनकर आगे बढ़ती गई। इसी तरह धीरे-धीरे वह दुर्योधन के सामने आकर खड़ी हुई। भाटों ने दुर्योधन की विरुदावली बखान की, पर राजकन्या दुर्योधन को भी छोड़कर आगे बढ़ने लगी। दुर्योधन से यह तिरस्कार न सहा गया। उन्होंने तुरंत ही उसे हाथ पकड़कर अपने रथ में बैठा लिया और सब राजाओं के देखते-देखते कर्ण को साथ लेकर चल दिए। यह देखकर जितने राजा वहाँ आए थे क्रोध में भर गए और मिलकर एक साथ दुर्योधन और कर्ण के ऊपर टूट पड़े। लोहा से लोहा बजने लगा। रुधिर की नदी बह निकली। उन राजाओं ने दुर्योधन और कर्ण पर इतने बाण बरसाए कि वे दोनों बिलकुल छिप गए। इस समय कर्ण ने बड़ा पराक्रम दिखाया और अकेले ही उन लोगों को ऐसी मार मारी, उनके ऊपर ऐसी घोर बाणवर्षा की कि तनिक देर में ही उनके मुँह फिर गए। दुर्योधन उस कन्या को लेकर हस्तिनापुर पहुँचे और विधिपूर्वक विवाह करके सुख से रहने लगे। कर्ण की उन्होंने बहुत प्रशंसा की, उन्हें अनेक भेंट और उपहार दिए, क्योंकि उन्हीं की सहायता से वे उस कन्या को ला सके थे।

कर्ण के वीरता-पूर्ण कार्य

इस समय कर्ण की वीरता का कुछ ठिकाना न था। कृपाचार्य, द्रोणाचार्य और महर्षि परशुराम सरीखे संसार-प्रसिद्ध गुरुओं से धनुर्वेद की विद्या सांगोपांग सीखकर वे महारथी बन गए थे—उनकी टक्कर का कोई दूसरा वीर न था। साथ ही इसके, तपस्वी भी वे बड़े भारी थे। नित्यप्रति दोपहर को गंगा-स्नान करके वे बड़ी देर तक सूर्य की उपासना करते थे और उपासना-काल में कोई भी ब्राह्मण जो कुछ उनसे माँगता, वही उसे देते। इस तरह उनकी शूर-वीरता और दान-वीरता की ख्याति दूर-दूर तक फैल गई।

जरासंध से द्वंद्व-युद्ध

इस समय अतुल पराक्रमी जरासंध मगध देश का राजा था। कर्ण की कीर्ति सुनकर 'नहिं तेजधारी सहत कबहूँ बढ़त अन्य प्रताप'—वाली कहावत के अनुसार उनके साथ बल आज़माने की उसकी प्रबल इच्छा हुई। निदान उसने द्वंद्व-युद्ध के लिये कर्ण को ललकारा। इधर कर्ण भी जोम में भरे हुए थे, फौरन राज़ी हो गए और उसके यहाँ जा पहुँचे। युद्ध होने लगा। पहले तो धनुष-बाण और फिर तलवारों से दोनों वीर लड़ते रहे, पर जब दोनों के धनुष और तलवारें टूट गईं तो मल्लयुद्ध की नौबत आई। दोनों बली थे—दोनों दाँव-पेच जानते थे। फल यह हुआ कि कई घंटे तक कुश्ती होती रही, पर न कर्ण जरासंध को हरा सके न जरासंध कर्ण को। तब कर्ण इस बात की कोशिश करने लगे कि जरासंध की जरा राक्षसी की जोड़ी हुई संधि तोड़ दें। जरासंध ने जब देखा कि कर्ण उन्हें जीता न छोड़ेंगे तो वे कर्ण की बड़ी प्रशंसा करने लगे और बोले, "हे

वीर, मैं तुमसे युद्ध करके बहुत प्रसन्न हुआ और तुम्हारी धीरता तथा वीरता पर मुग्ध हूँ। कहो तुम्हारा क्या उपकार करूँ? कर्ण के यह कहने पर कि "बस कृपा बनाए रखिए" जरासंध ने मालिनी नगरी उन्हें उपहार में दे दी। यह नगरी बड़ी समृद्धि-शालिनी थी। यहाँ की जनसंख्या बहुत ज्यादा थी—व्यापार-वाणिज्य खूब होता था और प्राकृतिक शोभा भी निराली थी। कर्ण इसे पाकर बहुत प्रसन्न हुए और हस्तिनापुर को लौट गए।

चौथा परिच्छेद

पांडव लोग अब सयाने हो गए थे और आशा करने लगे थे कि चाचा धृतराष्ट्र हस्तिनापुर की राजगद्दी हमें दे देंगे, क्योंकि धृतराष्ट्र को यह गद्दी राजा पांडु के मरने पर मिली थी और पांडु के सबसे बड़े पुत्र होने के कारण इसपर अब युधिष्ठिर का अधिकार था। पर दुर्योधन नहीं चाहता था कि पांडवों को राज्य मिले। उसने अंधे राजा को भी कुछ ऐसा सिखा-पढ़ा लिया था कि वे उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई काम न कर सकते थे। साथ ही इसके वे अपने सगे भतीजों का राज्य खुल्लमखुल्ला छीनना भी न चाहते थे। दुर्योधन भी बचपन से लेकर अब तक तो खेल-कूद में हारने के कारण पांडवों को अपना शत्रु समझ रहे थे और कई बार चोरी-छिपे उनमें से सबसे बली भीम के प्राण लेने का निष्फल प्रयत्न भी कर चुके थे। पर अब पांडवों को राज्य का हकदार समझकर उनके मन का वैर और भी दृढ़ हो गया और वे हरदम इस चिंता में रहने लगे कि किस तरह अपने रास्ते के ये रोड़े हटाएँ, क्योंकि पांडवों के न रहने पर, अपने सब भाइयों में बड़े होने के कारण वे ही गद्दी के अधिकारी थे।

लाक्षा-भवन की घटना

इस मामले में हस्तिनापुर के निवासी भी चुपचाप न थे। वे लोग पांडवों के आचरण से बहुत संतुष्ट थे और चाहते थे कि राजगद्दी युधिष्ठिर को ही मिले। दुर्योधन को वे लोग राजा

होने के योग्य न समझते थे और न्याय की रीति से भी राजगद्दी पर पांडवों का ही अधिकार था, न कि दुर्योधन का। इसलिये उन लोगों ने आंदोलन मचाना शुरू किया और राजा धृतराष्ट्र के पास एक डेपुटेशन इस आशय का भेजा कि राजगद्दी युधिष्ठिर को दे दी जाय। धृतराष्ट्र ने इसकी हामी भर ली। पर दुर्योधन ने जब यह बात सुनी तो वे आग-बबूला हो गए और धृतराष्ट्र के पास जाकर कहने लगे, "यह आप क्या कर रहे हैं? इन साँप के बच्चों को पाल-पोसकर क्या अब राज्य भी उन्हीं को देना चाहते हैं? क्या आपकी इच्छा है कि मैं और मेरे भाई भीख माँगें?"

दुर्योधन की ये बातें सुनकर धृतराष्ट्र के मन ने फिर पलटा खाया। वे विचलित हो उठे। अंत में भीष्म और विदुर सलाह देने को बुलाए गए और यह तै हुआ कि सब नहीं तो कम-से-कम आधा राज्य जरूर पांडवों को दे देना चाहिए। पर दुर्योधन इसपर भी राजी न हुए और कहने लगे, "यदि आप पांडवों को कुछ-न-कुछ देना ही चाहते हैं, तो मैं आधा राज्य तो देने न दूँगा, उनकी जीविका-भर का प्रबंध भले ही कर दीजिए।" इसपर धृतराष्ट्र ने फिर मंत्रियों से बातचीत की। इस बार यह सलाह ठहरी कि आपस की फूट, और आए दिन के झगड़े बंद करने के लिये पांडवों को वारणावर्त और उसके आस-पास का थोड़ा-सा प्रदेश दे देना चाहिए। वे संतोषी हैं, इसी में संतुष्ट हो जायँगे।" धृतराष्ट्र ने फौरन ही इस निश्चय के अनुसार काम किया। पांडवों को सूचना दे दी गई और एक दिन बड़े ठाट-बाट के साथ उन्हें वारणावर्त भेज दिया गया।

बेचारे पांडव चले तो गए, पर समझ गए कि उनके साथ अन्याय किया जा रहा है। उधर नगर-निवासियों ने यह सुना तो उनमें हाहाकार मच गया। वे लोग चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगे, "बुड्ढे की नियत खराब हो गई है। अनाथ पांडवों का राज्य छीन ले रहा है।" पर उनकी कौन सुनता था !

इधर दुर्योधन ने एक और ही चाल चलने की ठानी। उसने अपने मामा शकुनि, मंत्री पुरोचन तथा दो-एक और ऐसे ही मित्रों की सलाह से यह तै किया कि वारणावर्त में पाडवों को कुंती-समेत जलाकर मार डाला जाय। यह काम पुरोचन को सौंपा गया। उसने पांडवों के वारणावर्त पहुँचने के पहले ही वहाँ एक लाक्षा-भवन बनवा रखा, जिसमें पलस्तर की जगह राल, गंधक आदि एकदम जल उठनेवाली चीजें काम में लाई गई थीं।

लेकिन दुर्योधन की इस गुप्त कार्रवाई का पता किसी तरह विदुर को चल गया। वे पांडवों के हितैषी थे। इसलिये चलते समय उन्होंने म्लेच्छ भाषा में युधिष्ठिर को सब बात समझा दी। फल यह हुआ कि थोड़े दिनों तक तो पांडव लोग उस लाक्षा-भवन में रहे, मानों कोई बात ही न हो; फिर एक दिन उन्होंने स्वयं ही उसमें आग लगा दी और माता कुंती-सहित एक सुरङ्ग के रास्ते से बचकर निकल गए। पर यह सोचकर कि खुल्लमखुल्ला उनके प्राण लेने की चेष्टा की जा रही है वे कुंती-सहित ब्राह्मणों के वेश में भीख मंगते हुए कुछ दिनों तक इधर-उधर मारे-मारे फिरते रहे और फिर एकचक्रा नगरी में आकर एक ब्राह्मण के यहाँ रहने लगे। वहाँ रहते हुए भीमसेन

ने एक बड़े वलवान राक्षस का वध किया। थोड़े दिनों बाद पांचाल नरेश द्रुपद की कन्या का स्वयंवर हुआ, जिसमें दुर्योधन, कर्ण आदि राजसी ठाट-बाट से और पांडव लोग ब्राह्मणों के वेश में पहुँचे। और भी अनेक राजा तथा राजकुमार वहाँ आए थे, क्योंकि उस समय द्रुपद की कन्या कृष्णा (द्रौपदी) रूप, गुण और शील में अद्वितीय मानी जाती थी।

राजा द्रुपद चाहते थे कि कृष्णा का विवाह वीर पांडव अर्जुन के साथ हो। इसलिए उन्होंने एक भारी लोहे का धनुष स्वयंवर-सभा में रखवाया और ऊपर छत में घूमता हुआ मछली के आकार का निशाना बँधवाया। निशाने के ठीक नीचे एक बड़े बर्तन में तेल भरवा दिया गया। द्रौपदी को प्राप्त करने के लिये यह जरूरी था कि वह धनुष झुकाकर चढ़ाया जाय और नीचे तेल में देखते हुए ऊपर के हिलते हुए निशाने को वेधा जाय। एक-एक करके बहुत-से राजाओं ने इसकी कोशिश की, पर सब व्यर्थ। अंत में महाबली कर्ण उठकर धनुष के पास आए और उसको झुकाकर प्रत्यंचा चढ़ाने लगे। उनकी अद्वितीय बाण-विद्या की कीर्ति तो चारों ओर फैल ही चुकी थी, पर द्रौपदी अर्जुन के सिवा किसी के साथ विवाह नहीं करना चाहती थी। इसलिए उसने फौरन ही चिल्लाकर कहा, "मैं सूतपुत्र के साथ विवाह न करूँगी।" कर्ण लज्जित होकर बैठ गए। तब ब्राह्मण-वेशधारी अर्जुन ने उठकर बात-की-बात में वह निशाना वेध दिया। अर्जुन से कर्ण का दूसरा वैर यह हो गया और केवल अर्जुन ही नहीं, उस दिन से कर्ण द्रौपदी को भी अपना शत्रु

द्रौपदी-स्वयंवर

तमतमाने लगे और इन दोनों से बदला लेने की सोचने लगे।

ब्राह्मण-वेशधारी अर्जुन जब द्रौपदी को लेकर वहाँ से चलने लगे तब जितने क्षत्रिय राजा उस समय मौजूद थे—

कर्ण-अर्जुन युद्ध

खास कर दुर्योधन और कर्ण—उन्होंने इसको अपना बड़ा अपमान समझा और पांडवों-समेत राजा द्रुपद पर हमला कर दिया। कर्ण और अर्जुन एक दूसरे के सामने पड़ गए—दोनों में घोर युद्ध हुआ। पर जब कर्ण ने देखा कि उस ब्राह्मण (अर्जुन) से जीतना मुश्किल है, तो वे कहने लगे, "हे विप्र, तुम्हारा शारीरिक बल और हथियार चलाने की सफाई देखकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। समझ में नहीं आता कि तुम कौन हो, जो अब तक मेरे सामने डटे रहे, क्योंकि मुझे क्रोध आने पर देवराज इंद्र या कुन्तीपुत्र अर्जुन को छोड़कर और कोई मेरे सामने नहीं ठहर सकता।" यह सुनकर अर्जुन ने उत्तर दिया, "मैं न तो इंद्र हूँ और न अर्जुन। मैं तो अस्त्रविद्या जाननेवाला एक ब्राह्मण हूँ और तुम्हें हराने के लिये आया हूँ।" इसपर कर्ण ने ब्राह्मण से लड़ना ठीक न समझकर हार मान ली और अपनी राह ली।

कर्ण और अर्जुन एक दूसरे के सामने पड़ गए—दोनों में घोर युद्ध हुआ।

पाँचवाँ परिच्छेद

पांडवों का राजसूय-यज्ञ और उसमें दुर्योधन का अपमान

द्रुपद के संबंध से पांडवों की शक्ति बढ़ती देखकर धृतराष्ट्र को बहुत चिंता हुई। अतएव दुर्योधन, कर्ण आदि जब लौटकर हस्तिनापुर पहुँचे तो एक दिन वे इन दोनों को पास बैठाकर सलाह करने लगे कि पांडवों के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिए, जिससे उनकी तरफ़ से कोई खटका न रहे। दुर्योधन बोला, "मेरी समझ में तो यह आता है कि ब्राह्मणों से कोई ऐसा अनुष्ठान करवाया जाय जिससे कुंती और माद्री के पुत्रों में मनमुटाव हो जाय, या धन-संपत्ति का लोभ देकर राजा द्रुपद तथा उनके पुत्रों और मंत्रियों को अपनी ओर मिला लिया जाय, या उन्हें किसी तरह से इस बात पर राज़ी कर लिया जाय कि वे पांडवों को अपने यहाँ से निकाल दें। और नहीं तो, कुछ गुप्तचर ऐसे भेजे जायँ जो पांडवों को हस्तिनापुर में रहने की बुराइयाँ समझाकर पांचाल देश में ही रहने की सलाह दें। अगर इनमें से कुछ भी न हो सके तो किसी तरह धोखा देकर भीमसेन को मरवा डाला जाय, क्योंकि वही सबसे बली है। उसके मरते ही पांडवों के हाथ-पैर टूट जायँगे, वे फिर किसी लायक न रहेंगे और राज्य पाने की भी चेष्टा न करेंगे। जब तक भीम और अर्जुन जीते-जागते हैं हम लोग सन्मुख-युद्ध में पांडवों का कुछ नहीं बिगाड़ सकते। परंतु जब भीम नहीं रहेगा, तो अर्जुन में इतनी शक्ति नहीं कि मेरे और कर्ण

के सामने ठहर सके। तब हम लोग पांडवों को यहाँ बुलावेंगे और तरह-तरह से सताकर उन्हें ऐसा निर्बल कर देंगे कि वे किसी लायक न रहें।"

पर कर्ण को इनमें से एक भी सलाह पसंद न आई। वे बोले, "इन कुटिल उपायों से काम न चलेगा। पहले भी तो इसी तरह के अनेक तुच्छ और गुप्त उपायों से तुम काम ले चुके हो—पर क्या लाभ हुआ? जब पांडव बालक थे और तुम्हारे ही पास रहते थे, उसी समय तुम उनका कुछ न बिगाड़ सके—फिर इस समय तो वे लोग दूर हैं और द्रुपद-सरीखे शक्तिशाली राजा उनके सहायक हैं। द्रुपद धर्मात्मा है—निर्लोभ हैं। उनको भी तुम किसी तरह इस बात पर राजी नहीं कर सकते कि वे पांडवों को छोड़ दें। वे पहले से ही पांडवों को मानते थे—अब तो उनकी कन्या भी पांडवों के साथ ब्याही जा चुकी है। पांडवों में फूट डालना भी असंभव है; उन लोगों में आपस में बहुत प्रेम है और वे सब युधिष्ठिर के आज्ञाकारी हैं। इसलिये मेरी समझ में तो एक और ही उपाय आता है। वह यह कि पांडवों की जड़ जमने के पहले ही तुम उनपर चढ़ाई कर दो। द्रौपदी-स्वयंवर में जितने राजा द्रुपद के विरुद्ध हो गए थे उन्हें अपने साथ लेकर द्रुपद पर अचानक ही हमला कर दो। उन्हें युद्ध की तैयारी का मौक़ा ही न दो और पांडवों-समेत पकड़कर उन्हें यहाँ ले आओ। देर करने से कृष्ण भी यादवों की सेना लेकर पांडवों की सहायता को आ जायँगे। तब फिर उनसे लड़ना अपनी मौत बुलाना होगा। देखो, संसार में सब कुछ पराक्रम से ही मिलता

है। इंद्र ने भी पराक्रम से ही त्रिलोकी का राज्य पाया है। क्षत्रियों में पराक्रम की ही प्रशंसा की जाती है, कूटनीति की नहीं। साम, दाम या भेद के द्वारा तुम पांडवों को काबू में नहीं ला सकते। एक दंडनीति ही ऐसी है जिससे तुम हमेशा के लिये अपने शत्रुओं से छुटकारा पा जाओगे—फिर निष्कंटक राज्य करना।" पर धृतराष्ट्र को इनमें से एक भी युक्ति ठीक न जँची, और उन्होंने भीष्म, विदुर आदि वयोवृद्ध मंत्रियों से सलाह करके यह तै किया कि पांडवों को कुंती-द्रौपदी-सहित बड़े आदर के साथ हस्तिनापुर बुलाया जाय और आधा राज्य बाँटकर उन्हें दे दिया जाय, जिससे आए दिन की कलह बंद हो। उन्होंने दुर्योधन और कर्ण से साफ-साफ कह दिया कि उनकी सलाह बुरी थी इसी से नहीं मानी गई।

निदान विदुर राजा द्रुपद के यहाँ भेजे गए और बड़े आदर-सम्मान के साथ कुंती-द्रौपदी-सहित पांडवों को हस्तिनापुर ले आए। वहाँ आकर पांडव लोग धृतराष्ट्र के साथ रहने लगे। थोड़े दिनों बाद राजा धृतराष्ट्र ने उन्हें अपनी सभा में बुलवाया और भीष्म, विदुर आदि के सामने सब परिस्थिति समझाकर सलाह दी कि वे लोग इंद्रप्रस्थ जायँ और वहीं अपनी राजधानी बनाकर रहने लगें। पांडवों ने तुरंत ही इस आज्ञा का पालन किया और इंद्रप्रस्थ पहुँचकर वहाँ एक बहुत अच्छा दुर्ग बनवाया और नगर बसाकर वहीं रहने लगे। कुछ समय बाद भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव दिग्विजय के लिये निकल पड़े और चारों दिशाओं के राजाओं को जीतकर इंद्रप्रस्थ लौट आए। युधिष्ठिर ने बड़े ठाट के साथ राजसूय-यज्ञ करने की

ठानी। इस यज्ञ में दुर्योधन आदि कौरव भी पधारे और बड़े समारोह से यज्ञ की क्रिया संपन्न हुई।

लेकिन उस यज्ञ में एक बहुत बड़ी दुर्घटना हो गई। एक दिन जब दुर्योधन पांडवों के महल देखते हुए घूम रहे थे तो एक स्थान पर उन्हें जल का भ्रम हुआ और उन्होंने अपने कपड़े ऊपर समेट लिए। यह देखकर भीम और द्रौपदी खिलखिला-कर हँस पड़े। नौकर-चाकरों तक को हँसी रोकना मुश्किल हो गया। एक दूसरी जगह पानी देखकर उन्होंने समझा कि पृथ्वी है—चलते चले गए और झम से गिर पड़े—सब कपड़े सराबोर हो गए। आगे बढ़े तो एक स्थान पर बिल्लौरी पत्थर के बंद दरवाजे को देखकर यह समझा कि दरवाजा खुला हुआ है। बढ़ते चले गए। सिर टकरा गया। फिर उसी तरह का एक खुला दरवाजा मिला। उन्होंने समझा यह भी बंद होगा। उसे खोलने के लिये ज्यों ही हाथों का जोर दिया, मुँह के बल गिर पड़े। द्रौपदी से न रहा गया—बोली, "अंधों के अंधे ही होते हैं।" दुर्योधन को बड़ी लज्जा मालूम हुई और साथ ही द्रौपदी पर बेहद क्रोध भी हुआ। पर उन्होंने केवल यही कहा, "एक दिन इस हँसी का बदला लिया जायगा" और खून का घूँट-सा पीकर रह गए। हस्तिनापुर लौटकर दिन-रात वे इस चिंता में घुलने लगे कि किस तरह द्रौपदी से बदला निकाला जाय। सोच-फिक्र के मारे उनका खून सूख गया, रंग पीला पड़ गया और शरीर में हड्डियाँ ही हड्डियाँ रह गईं।

दुर्योधन की यह हालत देखकर उसके मामा गांधारराज शकुनि को बड़ा शोक हुआ। वे धृतराष्ट्र के पास गए और कहने

लगे, "हे राजन्, आजकल दुर्योधन बहुत दुबले होते जा रहे हैं। रंग पीला पड़ गया है। न जाने किस चिंता में घुलते रहते हैं। पूछने से कुछ बताते भी नहीं। अगर यही दशा रही, तो मुझे डर है कि कहीं उनके प्राणों पर न आ बने।" यह सुनकर धृतराष्ट्र बहुत चिंतित हो गए और एकदम दुर्योधन को बुलवाकर उसकी दुर्बलता का कारण पूछने लगे। दुर्योधन ने सब बात साफ़-साफ़ बतला दी और कहा, "जब तक अपने अपमान का बदला न ले लूँगा, मुझे चैन न पड़ेगा और अगर आपने इसमें मेरी सहायता न की, तो मैं प्राण दे दूँगा।"

युधिष्ठिर का जुआ खेलना और वनवास

धृतराष्ट्र को दुर्योधन पर बहुत ज्यादा स्नेह था—यहाँ तक कि उसका मन रखने के लिये वे पाप-पुण्य कुछ भी नहीं गिनते थे। इसलिये दुर्योधन की यह हालत देखकर उन्हें घोर दुःख हुआ और वे सोचने लगे कि क्या करें। शकुनि ने सलाह दी कि पांडवों को हस्तिनापुर बुलाया जाय और युधिष्ठिर के साथ जुआ खेलकर उसका सब राज-पाट हर लिया जाय। धृतराष्ट्र ने पहले तो इसमें आनाकानी की, पर जब देखा कि दुर्योधन भी इसी हठ पर अड़ा है, तो लाचार होकर उन्हें आज्ञा देनी पड़ी। एक बड़ा विशाल जुआ-घर बनाया गया और विदुर पांडवों को जुआ खेलने का न्यौता देने के लिये इंद्रप्रस्थ भेजे गए। उन लोगों के आ जाने पर सारी कौरव-सभा के सामने ही जुआ खेला गया, जिसमें धीरे-धीरे युधिष्ठिर अपना धन-कोष, राज-पाट, अपने चारों भाइयों को, द्रौपदी को, यहाँ तक कि स्वयं अपने आपको हार गए। दुर्योधन, कर्ण और दुःशासन ने

उस समय द्रौपदी को भरी सभा में लाकर उसका घोर अपमान किया और इस तरह अपने साथ किए गए अपमान का बदला निकाला।

द्रौपदी का अपमान होते देख पांडवों को बड़ा क्रोध आया, लेकिन जब वे स्वयं अपने आपको हार चुके थे, तो कर ही क्या सकते थे? खून का घूँट-सा पीकर रह गए। पर भीमसेन ने वहीं पर दुर्योधन, दुःशासन और धृतराष्ट्र के अन्य पुत्रों को मारने की शपथ खाई। सभा में हाहाकार मच गया। धृतराष्ट्र बहुत डर गए और दुर्योधन, शकुनि आदि से कह-सुनकर पांडवों का राज-पाट, धन-कोष सब वापस दिलवा दिया। वे लोग एकदम सभा-भवन से निकलकर इंद्रप्रस्थ के लिये चल दिए, एक क्षण भी न ठहरे। दुर्योधन ताड़ गया कि मामला ज्यादा गहरा है, अब खैर नहीं। वह दौड़ा-दौड़ा धृतराष्ट्र के पास गया और बोला, "यह आप क्या कर रहे हैं? चुटीले साँप को छोड़ देते हैं? क्या आप यह नहीं जानते कि ये लोग अब हमें चैन से बैठने न देंगे। उन्हें एक बार फिर बुलाइए और जुआ खेलने के लिये कहिये। इस बार शर्त यह रहे कि जो हारे, वह बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास करे। अगर अज्ञातवास की अवधि में पता चल जाय, तो फिर बारह वर्ष वनवास करना पड़े और जीतनेवाला दोनों राज्यों का प्रबंध अपने हाथ में ले ले।"

धृतराष्ट्र को इसपर भी राजी होना पड़ा। पाण्डव लोग रास्ते से ही लौटाये गये और उनके सामने ये शर्तें रखी गईं। युधिष्ठिर का प्रण था कि युद्ध और जुआ के लिये ललकारे जाने

पर कभी इनकार न करेंगे। इसलिये वे फिर खेलने लग गए। पर दुर्योधन का मामा शकुनि बड़ा ही धूर्त था—खेल में बेईमानी करता था। युधिष्ठिर सरल प्रकृति के थे—वे कुछ छल-कपट जानते न थे। नतीजा जो होना चाहिए था, वही हुआ। युधिष्ठिर हार गए और अपने भाइयों तथा द्रौपदी को लेकर और वनवासियों जैसा वेश बनाकर वन को चल दिए। उनकी माता कुंती विदुर के आश्रम में रह गईं, उनके राज्य पर दुर्योधन का अधिकार हो गया। उसकी साध पूरी हुई, क्योंकि उसका पूरा विश्वास था कि अज्ञातवास के दिनों में मैं अपने जासूसों के द्वारा उन लोगों का पता चला ही लूँगा और इस तरह उन्हें दूसरी बार बारह वर्ष वन में काटने पड़ेंगे। तब तक वे वन के कष्टों से या किसी हिंसक जंतु या राक्षस द्वारा मर-खप जायँगे और मैं हमेशा के लिये निष्कंटक हो जाऊँगा।

छठा परिच्छेद

पांडवों का वनवास

एक दिन धृतराष्ट्र ने विदुर को बुलाकर कहा, "जो होना था सो हो चुका, अब बताओ क्या करना चाहिये? विदुर ने इस समय भी वही कहा जो वे हमेशा से कहते थे, "दुर्योधन कुल का नाशक है, उसकी बातों पर कुछ ध्यान देने की जरूरत नहीं। पांडवों को बुलाकर उनके हिस्से का राज्य दे दीजिए और यदि दुर्योधन कुछ चीं-चपड़ करे, तो उसे घर से निकालकर सारा राज्य पांडवों ही को दे दीजिए, क्योंकि वे धर्मात्मा हैं, न्याय से प्रजा का पालन करेंगे।" विदुर की ये बातें सुनकर धृतराष्ट्र बहुत नाखुश हुए। उन्हें कुछ ऐसा मालूम पड़ा कि विदुर पांडवों के हिमायती हैं और दुर्योधन के शत्रु। इसलिये बड़े क्रोध में आकर उन्होंने विदुर को अपने यहाँ से निकाल दिया।

विदुर चल दिये और काम्यक वन में पांडवों के पास जा पहुँचे। उन्हें दूर से आते देखकर पहले तो वे लोग बहुत चौंके—सोचने लगे कि शायद राज-पाट ले लेने पर भी संतुष्ट न होकर दुर्योधन उनके बचे-खुचे अस्त्र-शस्त्र भी लेना चाहता है। पर जब विदुर निकट आये और परस्पर आवभगत तथा कुशल-प्रश्न के बाद बातचीत हुई तो धर्मराज युधिष्ठिर को विदुर की दशा पर घोर दुःख हुआ और साथ ही धृतराष्ट्र के ऊपर क्रोध भी आया। पर विदुर स्वयं बड़े शान्तचित थे। उन्होंने युधिष्ठिर से कहा, "बेटा, तुम्हें राज्य दिलवाने के लिये हम जो

जो कर सकते थे, वह कर चुके। मालूम होता है इस समय तुम लोगों को भाग्य में यह कष्ट भोगना ही बदा है। पर साथ ही दुर्योधन के द्वारा कुल का नाश भी होनेवाला है। अब तो मेरा उद्देश्य यही है कि न्याय की दुहाई देकर माँगने से तो तुम्हें राज्य मिलेगा नहीं—वनवास की अवधि समाप्त होने पर अपने सहायकों को इकट्ठा करके तलवार के ज़ोर से राज्य लेने की चेष्टा करना। मेरा आशीर्वाद है कि तुम जरूर सफल होगे, क्योंकि धर्म और न्याय तुम्हारे पक्ष में हैं।"

इस बीच में धृतराष्ट्र विदुर के चले जाने पर बड़े दुखी हुए और संजय को उन्हें लौटा लाने के लिये भेजा। संजय ने आकर युधिष्ठिर से विदुर को ले जाने की आज्ञा माँगी और उन्हें साथ लेकर हस्तिनापुर लौट आए।

तब तक यहाँ एक दूसरा ही गुल खिला। विदुर के चले जाने पर दुर्योधन, शकुनि आदि बहुत प्रसन्न हुए थे, क्योंकि वे जानते थे कि विदुर पांडवों के साथ बड़ी सहानुभूति रखते हैं। इसलिये उन्हें डर था कि कहीं विदुर की बातों में आकर धृतराष्ट्र पांडवों को वापस न बुला लें। विदुर के निकाल दिए जाने पर वे लोग निश्चिंत हो गए थे। पर जब विदुर बुला लिए गए, तो उन लोगों को भी वही चिंता लग गई और वे आपस में सलाह करने लगे कि क्या करना चाहिए। शकुनि ने दुर्योधन से कहा, "तुम व्यर्थ की चिंता क्यों किया करते हो? पांडव लोग वनवास की अवधि पूरी किए बिना धृतराष्ट्र के बुलाने पर भी वापस नहीं आएँगे—और अगर आएँगे तो हम लोग अवश्य किसी-न-किसी उपाय से उन्हें फिर नीचा दिखाएँगे।

यह सुनकर दुर्योधन को कुछ धीरज हुआ। इतने में ही कर्ण ने मुसकुराकर कहा, "हे दुर्योधन, तुम्हें डर किस बात का? अगर पांडव लोग अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर आवेंगे तो हम लोग सहज ही में उन्हें फिर कपट-जुए में हरा देंगे।" यह बात दुर्योधन को बहुत बुरी लगी, क्योंकि उसके मामा के ऊपर व्यंग्य छोड़ा गया था। यह देख कर्ण अपने मन की बात खोलकर कहने लगे। "इस समय तो सबसे अच्छा उपाय यही है कि हम लोग दल बाँधकर पांडवों के पास वन में पहुँचें और युद्ध करके इस दुर्बल तथा निस्सहाय अवस्था में उन्हें मार डालें। ऐसा होने से यह झगड़ा हमेशा के लिये मिट जायगा।"

कर्ण की यह सलाह सबको पसंद आई और तत्काल ही इसके ऊपर अमल किया गया। कौरवों की सेना काम्यक वन की ओर रवाना हुई। पर रास्ते में ही इन लोगों को महर्षि कृष्ण-द्वैपायन मिल गए। उन्हें जब मालूम हुआ कि ये लोग वन-वासी पांडवों को मारने के लिये जा रहे हैं, तो वे सबको लौटाकर धृतराष्ट्र के पास ले गए और उनसे कहा, "तुम्हारे पुत्रों ने छल करके पांडवों को वनवास दिया है—यह बात हमें अच्छी नहीं लगी। मालूम होता है तुम्हारा बड़ा पुत्र महादुर्मति है, जो राज्य के लोभ से पांडवों को दुःख दिया करता है। भीष्म, तुम या विदुर क्या किसी तरह उसे वश में नहीं रख सकते? उसे रोको, नहीं तो अगर वनवासी पांडवों को सताने जायगा, तो स्वयं मारा जायगा।" धृतराष्ट्र ने उत्तर दिया, "हे महर्षि, हम सब समझते हैं। पर क्या करें, पुत्र-स्नेह के कारण हमारा कुछ वश नहीं चलता। भाग्य में जो लिखा है, वह होगा।"

उधर जब पांडवों के वनवास का समाचार द्वारका पहुँचा तो कृष्ण, बलदेव आदि को घोर दुःख हुआ और वे लोग पांडवों से मिलने तथा उनके साथ सहानुभूति दिखाने के लिये काम्यक वन में पहुँचे। युधिष्ठिर आदि ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया और फिर धीरे-धीरे अपनी सब विपत्ति-कहानी कह सुनाई। द्रौपदी ने भी रो-रोकर अपने अपमान की बात कही और कहा, "मैंने कभी यह नहीं सोचा था कि वीर पांडवों की पत्नी होते हुए भी मुझे ये दिन देखने पड़ेंगे।" कृष्ण ने सबको धीरज बँधाया और तरह-तरह से समझा-बुझाकर तथा यह विश्वास दिलाकर कि वनवास की अवधि समाप्त होने पर पांडवों को अवश्य राज्य मिलेगा, वे द्वारका लौट गए।

एक दिन युधिष्ठिर ने अपने भाइयों से कहा, "जब हमें इसी तरह १२ वर्ष काटने हैं, तो क्यों न किसी ऐसे स्थान पर चलकर रहा जाय जहाँ पशु-पक्षी और फल-फूल खूब हों?" अर्जुन बोले, "अगर हम लोग द्वैतवन में चलकर रहें, तो सब तरह का आराम मिले। वह वन मेरा देखा हुआ है और बहुत रमणीक है।" निदान पांडव लोग द्रौपदी-सहित द्वैतवन में पहुँचे। वहाँ देखते क्या है कि वर्षा ऋतु का आरंभ है। ताल, तमाल, आम, जामुन, कदंब आदि के वृक्ष फूले और फले हुए वन की शोभा बढ़ा रहे हैं और मोर, चकोर, कोयल आदि पक्षी उनपर बैठे हुए आनंद से बोल रहे हैं। ऐसे मनोहर स्थान को देखकर वे लोग बहुत प्रसन्न हुए। वहाँ के वनवासियों और धर्मात्मा तपस्वियों ने भी बड़े आदर-सत्कार से उनका स्वागत किया। इसलिये वे सब वहीं रहने लगे और शिकार खेलने,

फल-फूल लाने, तपस्वियों के साथ धर्म-चर्चा तथा आपस में तरह-तरह की बातचीत करने में बड़ी शांति के साथ उनके दिन व्यतीत होने लगे। वहाँ रहकर अर्जुन ने घोर तपस्या करके तरह-तरह के दिव्यास्त्र प्राप्त कर लिए, जिससे उनकी शक्ति बहुत बढ़ गई और युधिष्ठिर को बड़ी प्रसन्नता हुई।

जब वनवास का समय समाप्त होने को आया, तो पांडवों ने एक ब्राह्मण को हस्तिनापुर भेजा और उसने आकर धृतराष्ट्र से उन लोगों की सब विपत्ति वर्णन की। सुनकर धृतराष्ट्र को बहुत दुःख हुआ और उन्होंने पांडवों की प्रशंसा तथा अपने पुत्रों की निंदा करके घोर विलाप किया। साथ ही इसके, जब उन्होंने अर्जुन की तपस्या और दिव्यास्त्रों की प्राप्ति का हाल सुना तो अपने पुत्रों के अमंगल की आशंका से वे घबराए भी बहुत। यह देखकर दुर्योधन, कर्ण और शकुनि एकांत में जाकर सलाह करने लगे। कर्ण ने कहा, "इस समय पांडव वन में अत्यंत दुखी हैं। अगर हम लोग अपना अतुल ऐश्वर्य दिखाकर इस दरिद्र और हीन दशा में उनसे एक बार जाकर मिलें तो बड़ी दिल्लगी रहे। अपने शत्रुओं की दुर्दशा देखने से ज्यादा सुख और किस बात में हो सकता है? इसके आगे पुत्र, धन, राज्य-लक्ष्मी आदि मिलने की खुशी भी कोई चीज नहीं। जब मृग-छाला पहने हुए और टूटी कुटी में रहते हुए दीन-हीन मन-मलीन पांडवों के सामने तुम अपने राजसी ठाट-बाट से जाओगे, तब तुम्हारी रानियाँ तरह-तरह के बहुमूल्य वस्त्र और गहने पहने हुए दुखिया द्रौपदी से मिलेंगी। तब वे लोग

घोषयात्रा

बहुत कुढ़ेंगे और मन-ही-मन अपने भाग्य की निन्दा करेंगे। जुआ-घर में भी उनको इतना दुःख नहीं हुआ होगा, जितना इस समय तुम्हें देखकर होगा। उनकी दुर्दशा देखकर, उन्हें कुढ़ता हुआ देखकर, तुम्हारी इच्छा पूरी होगी—तुम प्रसन्न होगे।"

कर्ण की यह सलाह सुनकर पहले तो दुर्योधन को बहुत खुशी हुई, पर दूसरे ही क्षण वे उदास होकर कहने लगे—"हे कर्ण, मैं भी कई दिन से यही बात सोच रहा था, पर करूँ क्या? पिताजी वहाँ जाने की आज्ञा ही नहीं देते। एक तो वे पांडवों के लिये वैसे ही दुखी रहते हैं, उनपर सहानुभूति रखते हैं। दूसरे उनकी तपस्या का हाल सुनकर वे उन्हें बड़ा शक्तिशाली भी समझने लगे हैं। अगर उन्हें मालूम हो जाय कि हम लोग सिर्फ पांडवों को चिढ़ाने और कुढ़ाने के लिये वहाँ जाना चाहते हैं, तो वे हर्गिज आज्ञा नहीं देंगे; क्योंकि वे पांडवों को हमसे अधिक प्रबल समझते हैं। सोचते हैं कि कहीं हम लोग वहाँ जाकर हानि न उठाएँ। इसलिए तुम कोई ऐसा उपाय सोचो, कोई ऐसा बहाना ढूँढ़ो, जिससे पिताजी आज्ञा दे दें।"

दूसरे दिन कर्ण शकुनि और दुःशासन से सलाह करके दुर्योधन के पास गए और बोले—"मैंने द्वैतवन जाने का एक बहुत अच्छा बहाना सोच लिया है। तुम्हारे घोष द्वैतवन में ही हैं। उनकी देखभाल करने के लिए, गायों की गिनती करने के लिए तुम्हारा वहाँ जाना जरूरी है। इसलिए महाराज धृतराष्ट्र जरूर आज्ञा दे देंगे।" इतने में ही शकुनि भी वहाँ

आ गये और उन्होंने भी यही बात कही। दुर्योधन बहुत खुश हुए और तीनों जने मिलकर महाराज धृतराष्ट्र के पास गए। साधारण कुशल-क्षेम पूछने के बाद इन लोगों ने धृतराष्ट्र से निवेदन किया कि गायों की गिनती करने तथा शिकार खेलने के लिए द्वैतवन जाने की आज्ञा दी जाय। धृतराष्ट्र बोले—"यह तो तुम ठीक कहते हो, पर मैंने सुना है कि वीर पांडव भी वहीं रहते हैं और वे लोग तुमसे जले हुए भी हैं। युधिष्ठिर को तो मैं नहीं कहता, पर भीमसेन अव्वल नंबर के क्रोधी हैं। ऐसा न हो कि तुम लोग उनसे कुछ छेड़-छाड़ करो और वे लोग अपनी तपस्या के बल से तुम्हें भस्म कर दें या अस्त्र-शस्त्रों के द्वारा मार डालें। अगर तुम सेना लेकर वहाँ जाओगे और उनको सताओगे, तो इसमें बड़ी बदनामी होगी। जीत तुम उन्हें सकते नहीं; क्योंकि जानते ही हो अर्जुन ने तपस्या करके कैसे-कैसे दिव्य अस्त्र-शस्त्र प्राप्त कर लिये हैं। इसलिये वहाँ जाने का विचार छोड़ दो और गायों की देखभाल करने के लिए किसी योग्य कर्मचारी को भेज दो। मौक़ा देखकर हर एक काम करना चाहिए।"

यह सुनकर शकुनि ने कहा—"पांडव लोग बड़े धर्मात्मा हैं। वे लोग १२ वर्ष तक वन में रहने की प्रतिज्ञा कर चुके हैं। इसलिए वे लोग हमारे वहाँ पहुँचने से कभी न चिढ़ेंगे, और हमीं को क्या पड़ी है, जो उनसे जाकर छेड़-छाड़ करें। हमें तो केवल गायों की देखभाल करनी है। पांडवों से मिलने की हमारी बिलकुल इच्छा नहीं।" दुर्योधन और कर्ण ने भी शकुनि की हाँ-में-हाँ मिलाई और धृतराष्ट्र को लाचार होकर आज्ञा देनी पड़ी।

दूसरे ही दिन कर्ण—शकुनि—दुःशासन आदि के साथ दुर्योधन द्वैतवन को रवाना हुए। साथ में सैकड़ों स्त्रियाँ और बहुत-सी सेना थी। उनके सब छोटे भाई तथा हजारों पुरवासी भी अपनी-अपनी स्त्रियों को लेकर द्वैतवन और द्वैत-सरोवर देखने चल दिये। सेना में आठ हजार रथ—तीस हजार हाथी—नौ हजार घोड़े और असंख्य पैदल सिपाही थे। बहुत से छकड़े—जिनमें तरह-तरह का सामान भरा था—लिये हुये नौकर-चाकर और शिकारी दुर्योधन के पीछे-पीछे चले। कुछ बड़े-बूढ़े मंत्री भी धृतराष्ट्र की आज्ञा से साथ हो लिये। ऐसा मालूम पड़ता था, मानों पूरा नगर-का-नगर एक जगह से उठकर दूसरी जगह जा रहा है। द्वैतवन में पहुँचकर, इन लोगों ने सरोवर से दो कोस इधर ही डेरा डाल दिया। आज्ञा पाते ही नौकर-चाकरों ने हजारों तंबू-कनात खड़े कर दिये और ऐसे अच्छे-अच्छे बाजार लगाये कि सुंदर से सुंदर नगर भी उस वन के सामने फीका जँचने लगा।

कुछ दिनों तक गायों के गिनने और उनकी अवस्था तथा जाति आदि के लिखने का काम होता रहा। उसके बाद बस गुलछर्रे उड़ने लगे। दुर्योधन आदि दिन-रात स्त्रियों को साथ लिये हुए राग-रंग में मस्त रहने लगे—कभी शिकार खेलते, कभी नृत्य का आनंद लूटते और कभी वन-विहार करते।

इस समय वसंत ऋतु थी। शीतल-मंद-सुगंध पवन चला करता था। रातें भी चाँदनी थीं। ऐसे समय में वन की शोभा का क्या कहना! वहाँ पर जो सरोवर था, उसकी सुंदरता निराली ही थी। दुर्योधन की इच्छा हुई कि जल-विहार किया जावे

और इसके लिये उन्होंने अपने नौकर-चाकर भेजे कि सरोवर के किनारे पर एक सुंदर क्रीड़ा-भवन बना दें;

गंधर्वों से युद्ध

लेकिन उसी समय गंधर्वों का राजा चित्रसेन भी अप्सराओं को साथ लेकर, उसी वन में विहार करने के लिए आया हुआ था और दैवयोग से उसी सरोवर में जल-क्रीड़ा कर रहा था। दुर्योधन के नौकर और सिपाही जब वहाँ पहुँचे, तो गंधर्वों ने उन्हें रोका। वे लोग भी सरोवर को खाली न पाकर, दुर्योधन के पास लौट आये और सब हाल सुनाया। दुर्योधन को बहुत क्रोध आया। उन्होंने अपने योद्धाओं को तुरत आज्ञा दी कि जाकर गंधर्वों को वहाँ से मारकर भगा दें। सेनापति लोग सरोवर पर गये और उन्होंने गंधर्वों से कहा—"धृतराष्ट्र के पुत्र महाबली राजा दुर्योधन इस सरोवर में जल-विहार करने के लिए आ रहे हैं। तुम लोग एकदम इस स्थान को खाली कर दो।" यह सुनकर गंधर्व लोग हँसने लगे, बोले—"दुर्योधन हमारा स्वामी नहीं है, जो हम उसकी आज्ञा मानें। जान पड़ता है उसे मौत का डर नहीं—नहीं तो हम लोगों से ऐसी बात न कहता। और तुम लोग भी भला चाहो, तो चुपचाप यहाँ से लौट जाओ—नहीं तो एक-एक को यमपुर भेज दिया जावेगा।" सेनापति लोग यह सुनकर दौड़ते हुए दुर्योधन के पास आये। दुर्योधन आग-बबूला हो गये और उन लोगों को आज्ञा दी कि वे दुष्ट गंधर्वों को इस ढिठाई का मज़ा चखावें, एक को भी जीता न छोड़ें।

यह आज्ञा पाते ही महाबली दुःशासन आदि हज़ारों वीर योद्धाओं को साथ लेकर और अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर वे

गंधर्वों से युद्ध करने के लिये चल पड़े। सेना के हाथियों, रथों, घोड़ों आदि के भार से पृथ्वी काँप उठी। वहाँ पहुँचकर ये लोग गंधर्वों की भीड़ को चीरकर वन के भीतर घुसने की चेष्टा करने लगे। यह देखकर गंधर्वोंने बड़ी नरमी से उन्हें समझाया, ऐसा दुस्साहस करने से मना किया; पर भला वे लोग क्यों मानने लगे! जबर्दस्ती घुसने लगे। गंधर्वों ने जाकर सब हाल अपने राजा चित्रसेन से कहा। उसे बहुत क्रोध हुआ और उसने कौरवों को इस ढिठाई का मजा चखाने के लिए अपनी सेना को आज्ञा दी। चित्रसेन की आज्ञा पाकर गंधर्व लोग भी तरह-तरह के अस्त्र-शस्त्र लेकर कौरवों के ऊपर टूट पड़े।

उन्हें उस भयानक रूप से आते देखकर, कौरव-पक्ष के वीर—जो यह सोचे बैठे थे कि युद्ध की नौबत ही न आएगी, रोब से ही काम चल जायगा—डर के मारे इधर-उधर भागने लगे। पर वीर कर्ण वहीं डटे रहे। उन्होंने पीठ नहीं दिखाई; बल्कि उन्होंने अनेक प्रकार के पैने बाणों से गंधर्व-सेना को व्याकुल कर दिया—उसके छक्के छुड़ा दिए। सैकड़ों जान से मारे गये और हजारों घायल होकर गिर पड़े। कौरवों का उत्साह बढ़ा—वे लोग ठहर गये और जमकर युद्ध करने लगे। वीर कर्ण सबसे आगे रथ पर बैठे हुए बाण-वर्षा कर रहे थे। चित्रसेन ने अपनी सेना की यह दुर्दशा देखी, तो उसे बहुत क्रोध चढ़ आया और दिव्य अस्त्र-शस्त्रों की सहायता से उसने ऐसी माया दिखाई कि कौरव लोग थोड़ी देर में व्याकुल हो गये—उनके पैर उखड़ गए। पर कर्ण तब भी अपनी जगह पर डटे रहे। यह देखकर चित्रसेन ने हजारों गंधर्वों को लेकर एक

साथ उनको घेर लिया। कर्ण के ऊपर खड्ग, शूल, तोमर, गदा आदि भाँति-भाँति के अस्त्र-शस्त्रों की बौछार-सी होने लगी। किसी ने उनके रथ का धुरा काट दिया, किसी ने ध्वजा, किसी ने पहिये। इस तरह से जब तिल-तिल करके उनका रथ नष्ट हो गया और अनेक घावों के लगने से सारा शरीर लोहू-लुहान हो गया, तो वे ढाल-तलवार लेकर कूद पड़े और विकर्ण के रथ पर बैठकर बचाव के लिए युद्ध-भूमि से भाग गये।

कर्ण के चले जाने पर गंधर्वों की चढ़ बनी। उन्होंने सहज में कौरव-सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया और संमोहन-अस्त्र के द्वारा बचे-खुचे योद्धाओं को बेहोश करके, दुर्योधन आदि प्रधान-प्रधान कौरवों तथा उनकी स्त्रियों को पकड़ लिया। इतना ही नहीं, उन्होंने इन लोगों के कपड़े भी उतार लिये और इन्हें विमानों से बाँधकर ले चले।

यह देखकर कुछ भागे हुए सैनिक हाहाकार करते हुए डेरों में आये, जहाँ बूढ़े-बूढ़े मंत्री तथा स्त्रियाँ थीं; पर इन लोगों से भला क्या सहायता मिल सकती थी? निदान सब लोग मिलकर वहाँ गये, जहाँ नदी के किनारे एक कुटी में पांडव रहते थे। वहाँ पहुँचकर इन लोगों ने युधिष्ठिर के पैरों में गिरकर अपनी सब विपत्ति कह सुनाई। कोमल-हृदय युधिष्ठिर इस समाचार से बहुत दुखी हुए। उन्होंने फौरन अपने भाइयों को आज्ञा दी कि वे जैसे बने वैसे कौरवों को गंधर्वों के बंधन से छुड़ा लावें। भीम बोले—"हम लोगों को क्या पड़ी है, जो अपने शत्रुओं को छुड़ाने जायँ? अच्छा ही हुआ, जो हमारे कांटे यों ही ऊपर के ऊपर निकल गये।" इस पर युधिष्ठिर ने कहा—"नहीं भीम,

शरणागत की हमेशा रक्षा करनी चाहिए और यह भी याद रखना चाहिए कि कौरवों ने हमारे साथ कितना ही अन्याय किया हो, हमें कितने ही कष्ट दिये हों, फिर भी वे हमारे भाई हैं। उनके और उनकी स्त्रियों के पकड़े जाने में हमारा भी अपमान है। इसीलिए उन्हें छुड़ाना हमारा धर्म है। फिर यह भी तो सोचो कि दुर्योधन के पक्षवालों ने हमारे बाहुबल का भरोसा करके तुमसे सहायता माँगी है। क्या यह गर्व की बात नहीं है? दुर्योधन तो अपना भाई है, अगर कोई और भी इस तरह हमारी शरण में आता, तो क्या उसकी रक्षा न करते? इसलिए तुम लोग एकदम जाओ और साम, दाम, दंड, भेद से जैसे भी बने, भाइयों और उनकी स्त्रियों को छुड़ाकर ले आओ। मैंने यदि यह यज्ञ न शुरू कर दिया होता, तो मैं भी तुम्हारे साथ चलता।"

निदान भीमसेन आदि चारों भाई उठकर खड़े हो गये। उन लोगों ने कवच पहने, तरह-तरह के अस्त्र-शस्त्र लिये और अच्छे-अच्छे रथों पर सवार होकर गंधर्वों की ओर चल दिये। गंधर्व लोग युद्ध में विजयी हुए लौटे जा रहे थे। पांडव वीरों को तेजी से अपनी ओर आते देखकर, कुछ सहम गये और जब देखा कि ये लोग भी युद्ध करने को आ रहे हैं, तो व्यूह बनाकर खड़े हो गये। पांडवों ने पहले तो उन्हें समझाया और दुर्योधन आदि को छोड़ देने के लिए कहा; पर वे लोग इसपर राजी न हुए।

निदान युद्ध होने लगा। थोड़ी देर बाद जब अर्जुन ने देखा कि गंधर्व लोग सहज में नहीं मानेंगे, तो उन्होंने दिव्य

अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग शुरू किया। उधर गंधर्वों का भी क्रोध बढ़ा। घोर संग्राम छिड़ गया। अद्भुत दृश्य था। एक ओर केवल चार पांडव और दूसरी ओर हजारों की संख्या में गंधर्व। फिर भी अर्जुन की बाण-वर्षा के मारे गंधर्वों के छक्के छूट गये और वे लोग इधर-उधर देखने लगे। इसपर चित्रसेन बहुत कुपित हुआ और माया-युद्ध करने लगा—कभी अदृश्य हो जाता और आकाश से पांडवों के ऊपर बाणों और पत्थरों की वर्षा करता, कभी सामने होकर तलवार चलाता, कभी पीछे से आकर वार करता। हजारों गंधर्वों के बीच में घिरे हुए पांडव ऐसे मालूम पड़ते थे, जैसे बादलों के बीच में सूर्य; पर अर्जुन भी धनुर्विद्या में किसी से कम न थे और तपस्या करके तरह-तरह के दिव्यास्त्रों का प्रयोग भी सीख चुके थे। फल यह हुआ कि चित्रसेन की एक भी न चली और वीर अर्जुन के सामने उसे हार स्वीकार करनी पड़ी।

युद्ध बंद हो गया और अर्जुन चित्रसेन के साथ कौरवों को लिये हुए धर्मराज युधिष्ठिर के पास पहुँचे। चित्रसेन ने युधिष्ठिर से दुर्योधन के वन में आने का कारण कह सुनाया। फिर भी धर्मराज को क्रोध नहीं आया। उन्होंने यही कहा—"कौरव हमारे भाई हैं। इन्हें इनकी स्त्रियों-सहित छोड़ दो। तुमने बड़ी कृपा की, जो इन लोगों को जान से नहीं मार डाला।"

इस प्रकार कौरव लोगों का छुटकारा हुआ। युधिष्ठिर ने उनका बड़ा सेवा-सत्कार किया और फिर दुर्योधन को तरह-तरह के उपदेश देकर विदा किया। वे बोले—"देखो भाई, फिर कभी ऐसा अनुचित साहस मत करना। इसमें कभी कल्याण नहीं

होता। तुम्हारे पिता ने हम अनाथों को बचपन से पाल-पोसकर इतना बड़ा किया है। तुम्हारे कुल की यही रीति है। तुम्हें भी परमात्मा ने सब तरह से संपन्न बनाया है। तुमको भी वही रीति पालन करनी चाहिए। क्षत्रियों का धर्म दीनों की सहायता करना है—उन्हें सताना नहीं।"

ये बातें सुनकर दुर्योधन युधिष्ठिर के आश्रम से चल दिये। उस समय उनका बुरा हाल था। शर्म के मारे गड़े जा रहे थे—आँखें ऊपर को न होती थीं। वे सोचते थे—"जिन्हें शत्रु समझकर हम चिढ़ाने आये थे, उन्हीं के हाथों हमारी प्राण-रक्षा हुई। कैसी शर्म की बात है! डूब मरने की जगह है! अब मैं किस तरह हस्तिनापुर में जाकर लोगों को मुँह दिखाऊँगा। भीष्म आदि बड़े-बूढ़ों ने पहले ही मना किया था। अब तो वे लोग मुझे काट-काट खायँगे—मेरा वहाँ रहना मुश्किल कर देंगे। धिक्कार है मुझे, जो क्षत्रिय होकर शत्रुओं की कृपा का भिखारी हुआ। अब तो मेरे लिए यही उचित है कि उपवास करके प्राण दे दूँ—हँसी करवा-करवाकर जीने से क्या लाभ!" यह सोचकर वे एक स्थान पर ठहर गये। हाथी, घोड़े, रथ आदि सब खुलवा दिये और एक आसन पर बैठकर फिर चिंता में डूब गये।

इतने में ही कर्ण सामने से आते हुए दिखाई पड़े। वे जब से संग्राम-भूमि से भागकर गये थे, तब से पीड़ा के मारे मूर्छित पड़े थे। उन्हें कुछ पता न था कि उनके चले जाने के बाद क्या हुआ—कौन जीता और कौन हारा। उन्होंने जब देखा कि दुर्योधन आदि जीते-जागते हैं—किसी के चोट या घाव का

निशान नहीं—तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और वे बड़े हर्ष दुर्योधन को विजय के लिये बधाई देने लगे; पर दुर्योधन सच्चा-सच्चा हाल उनसे कह सुनाया और अपने प्राण त्यागने का निश्चय भी बता दिया। यह सुनकर कर्ण को बहुत ही दुःख हुआ और वे तरह-तरह की बातों से दुर्योधन को समझाने की चेष्टा करने लगे।

वे बोले—"पांडव लोग भी इस समय तुम्हारी प्रजा हैं। प्रजा का धर्म होता है कि राजा की सेवा करे। इसलिए यदि पांडवों ने इस मौक़े पर तुम्हारी सहायता की, तो कोई बड़ी बात नहीं।" लेकिन दुर्योधन के चित्त को शांति न हुई और उन्होंने वहीं उपवास करके अपने प्राण दे देने का निश्चय किया। तब तो दुःशासन रोता हुआ उनके पैरों पर गिर पड़ा और बोला—"मुझे राज-पाट कुछ न चाहिए। मैं तो चाहता हूँ कि आप ही चिरकाल तक राज्य करते रहें। आपके बिना मेरे लिये संसार में कुछ भी नहीं। अगर आप अपना हठ न छोड़ेंगे, तो निश्चय समझिये, मैं भी प्राण दे दूँगा।" कर्ण ने भी इसी तरह की बातें कहीं और तब बड़ी मुश्किल से वे दोनों उन्हें हस्तिनापुर चलने के लिये राज़ी कर सके।

वहाँ पहुँचकर लेने के देने पड़ गये। भीष्म ने आते ही इन लोगों को आड़े हाथों लिया।

वे दुर्योधन से बोले—"बेटा, द्वैतवन जाने के लिये हमने तुम्हें मना किया था, पर तुमने हमारी बात न मानी। देखो पांडव कैसे धर्मात्मा हैं कि गंधर्वों के हाथ से तुम्हारी रक्षा की! क्या तुम्हें उनके साथ नीचता का बर्ताव करते लज्जा नहीं

कर्ण का दिग्विजय के लिये प्रस्थान

आती ? और देखो, यह व्यर्थ की डींग मारनेवाला कर्ण तुम्हें युद्ध-स्थल में छोड़कर वहाँ से भाग गया। इसी के बल पर तुम पांडवों से बैर मोल लेना चाहते हो ?" भीष्म के ये वचन कर्ण को तीर की तरह लगे और वे क्रोध में भरकर दुर्योधन से कहने लगे—"हे दुर्योधन, भीष्म हमेशा पांडवों की प्रशंसा और हम लोगों की निंदा किया करते हैं। तुमसे ये द्वेष रखते हैं और इसीलिए मुझसे भी मौक़े-बेमौक़े बुरी-भली कहते रहते हैं। अगर तुम राज़ी हो, तो सारी पृथ्वी जीतकर, जो काम चार पांडवों ने मिलकर किया था, वही केवल चतुरंगिणी सेना की सहायता से मैं अकेले ही कर दिखाऊँ। भीष्म द्वेष के कारण ही मुझे तुच्छ समझते रहते हैं। मैं चाहता हूँ कि इन्हें दिखा दूँ कि मैं भी वीर हूँ—कायर नहीं।" दुर्योधन ने बड़ी ख़ुशी से इसकी आज्ञा दे दी और महाबली कर्ण एक अच्छे मुहूर्त में धनुष-बाण लेकर तथा रथ पर सवार होकर, चतुरंगिणी सेना के साथ दिग्विजय के लिए निकल पड़े।

सातवाँ परिच्छेद

सबसे पहले उन्होंने पांचाल देश पर चढ़ाई की और राजा द्रुपद को बुरी तरह से परास्त किया! हार मानकर द्रुपद ने अपार धन-राशि—सोना, चाँदी, मणि, माणिक—कर्ण की भेंट की। इसके बाद वीरवर कर्ण राजा द्रुपद के अनुगत और जितने छोटे-मोटे राजा थे, सबको हराकर उत्तर की ओर बढ़े। वहाँ राजा भगदत्त ने बड़े ताव में आकर उनसे मोर्चा लिया; पर महाबली कर्ण के सामने उनकी एक न चली और घोर युद्ध के बाद हार मान-कर उन्हें भी कुरु-साम्राज्य की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। फिर कर्ण ने उत्तर के अन्य राज्यों को भी एक-एक करके विजय किया और उन्हें हस्तिनापुर के राज्य में मिला लिया। उसके बाद पहाड़ी राजाओं की बारी आई। एक-एक करके वे भी हराये गये और कर देने को विवश किये गये। अंत में नैपाल-राज्य को जीतकर वीर कर्ण ने उत्तर दिशा की विजय समाप्त की और पूर्व की ओर सेना-सहित प्रस्थान किया। वहाँ के जितने राज्य थे—अंग, बंग, कलिंग, शुंडिक, मिथिला, मगध, कर्कखंड, आवशीर, योध्य, अहिच्छत्र आदि—उन सबको जीतकर साम्राज्य का विस्तार बढ़ाया और अतुल संपत्ति कर-स्वरूप इकट्ठी कर ली।

कर्ण की दिग्विजय

वहाँ से चलकर विजयवाहिनी लिये हुए सूर्यपुत्र कर्ण वत्सभूमि नाम के देश में गये। उसे विजय करके उन्होंने केवला,

मृत्तिकावती, मोहन, पत्तन, त्रिपुरा, कोशल आदि राज्यों को भी जीत लिया और सब राजाओं से कर वसूल करके दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। पहले तो उन्होंने विदर्भ देश में पहुँच-कर कुंडिनपुर के नृपति रुक्मी से—जो श्रीकृष्ण का साला और रुक्मिणी का भाई था—घोर युद्ध किया। रुक्मी भी बड़ा पराक्रमी था। बहुत काल तक युद्ध होता रहा; पर विजय कर्ण ही की हुई। रुक्मी ने हार मानी और अनेक दास-दासी एवं हीरे-जवाहिरात कर-स्वरूप भेंट किये। उसके बाद पांड्य और शैल प्रदेशों को जीतकर कर्ण ने केरल, नील, वेणुदारिसुत आदि राजाओं पर चढ़ाई करके उनको भी हराया और हर एक से कर वसूल किया। फिर शिशुपाल-पुत्र चंदेरी-नरेश को तथा आस-पास के दूसरे राजाओं को जीतकर, उज्जैन की ओर दृष्टि की और वहाँ के राजा के साथ मित्रता स्थापित करके, उन्हें साम्राज्य का मददगार बना लिया। उसके बाद पश्चिम की ओर जाकर यवन, बर्बर, भद्र, रोहितक, आग्नेय, मालव, शशक आदि जातियों को हराया और उनसे कर वसूल किया।

इस तरह चारों दिशाओं को जीतकर अपार धन-राशि इकट्ठी करके और सब देशों में कौरवों का झंडा फहराकर वीर-वर कर्ण हस्तिनापुर को लौटकर चल दिये।

ऐसी दिग्विजय करना कोई सहज बात न थी। कर्ण-सरीखे वीर का ही यह काम था कि उन्होंने अकेले संसार-भर के राजाओं को हरा दिया। और यह सब किया किसके लिए? एक मित्र की भलाई के लिए, मित्र-धर्म निभाने के लिए। अगर चाहते, तो क्या वे स्वयं राजा नहीं बन सकते थे?

किसमें इतनी हिम्मत थी जो उनका विरोध करता? पर नहीं, शूर-वीरता में अद्वितीय होने के साथ-ही-साथ सूर्यपुत्र कर्ण त्याग-वीरता में भी अद्वितीय थे। लोभ उन्हें छू तक न गया था। इसी से संसार-भर को जीतकर जितनी भी धन-दौलत मिली थी, वह सब बड़ी प्रसन्नता से उन्होंने दुर्योधन के सामने रख दी। धन्य वीर कर्ण! ऐसे सच्चे मित्र, ऐसे शूर-वीर, ऐसे निर्लोभी महापुरुष संसार में थोड़े ही होते हैं; और जो होते हैं, वे अपने पीछे अमर-कीर्ति छोड़ जाते हैं।

हाँ, तो जब यह समाचार हस्तिनापुर पहुँचा कि महावीर कर्ण चारों दिशाओं को जीतकर सकुशल लौट रहे हैं, तो राजा दुर्योधन ने अपने भाइयों और बंधु-बांधवों-सहित आगे बढ़कर बड़े हर्ष और प्रेम से उनका स्वागत किया और बड़े आदर-सम्मान के साथ उनकी सवारी हस्तिनापुर में निकाली। वे यह देखकर बहुत प्रसन्न हुए कि कर्ण ने वह काम कर दिखाया, जो भीष्म और द्रोण से भी नहीं हुआ था। सारे नगर में दिग्विजय का ढिंढोरा पिट गया और सब लोगों के मन में यह बात जम गई कि अगर पांडवों के साथ युद्ध की नौबत आई, तो वीर कर्ण सहज में ही उन्हें हरा देंगे।

कई दिन बाद कर्ण ने दुर्योधन से कहा—"हे दुर्योधन, इस पृथ्वी पर तुम्हारा कोई शत्रु बाकी नहीं। अब तुम्हें चाहिए कि विद्वान् पंडितों से पूछकर कोई महायज्ञ कर डालो, जिससे तुम्हारी कीर्ति हो।" दुर्योधन ने फौरन ही अपने पुरोहित को बुलाकर यह विचार प्रकट किया। पुरोहित बोले—"महाराज, अभी आपके

दुर्योधन का वैष्णव-यज्ञ

पिता और धर्मराज युधिष्ठिर जीवित हैं। इसलिए आप राजसूय यज्ञ तो कर नहीं सकते ; पर राजसूय ही के समान फल देनेवाला वैष्णव-यज्ञ होता है, आप वह कर डालिये। अपने हराये हुए राजाओं से सुवर्ण लेकर उसका एक हल बनवाइये और उससे नगर के बाहर की भूमि जुतवाकर वहीं शास्त्र की विधि से यज्ञ कीजिये।"

वहाँ क्या देर थी। तत्काल ही यज्ञ की तैयारियाँ होने लगीं और नाना प्रकार की सामग्री जुटाई जाने लगी। चारों ओर के राजाओं को बुलाने के लिये दूत भेजे गये। द्वैतवन में पांडवों के पास भी न्यौता पहुँचा ; पर युधिष्ठिर ने दूत को यह कहकर लौटा दिया कि बिना बनवास की अवधि पूरी किये हम नगर में न जायँगे; लेकिन भीमसेन से न रहा गया। उन्होंने दूत से कहा—"दुर्योधन से कह देना कि वनवास के तेरह वर्ष समाप्त होने पर जिस समय महाराज युधिष्ठिर युद्ध की शस्त्राग्नि में उसे डालेंगे, उसी समय हम लोग उससे मिलेंगे।"

कर्ण की अर्जुन-वध की प्रतिज्ञा

खैर, यज्ञ हुआ और बड़े ठाट से हुआ। जब वह समाप्त हो गया, तो दुर्योधन शुभ मुहूर्त में यज्ञस्थल छोड़कर नगर में आये और माता-पिता के पैर छूकर तथा गुरु-जनों को प्रणाम करके एक ऊँचे सिंहासन पर जा विराजे। उस समय महावीर कर्ण ने खड़े होकर यज्ञ की समाप्ति पर उन्हें बधाई दी और कहा—"जिस दिन पांडवों का नाश करके आप राजसूय-यज्ञ करेंगे, उसी दिन मैं आपका यथेष्ट सत्कार करूँगा।" यह सुनकर दुर्योधन को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने कर्ण को गले से लगा लिया और फिर

विचार अधिक सूक्ष्म दृष्टिसे होना चाहिये।

यज्ञके नाम।

संस्कृत में हरएक नाम सार्थ होता है। यदि यज्ञमें पशुहिंसा आवश्यक होगी तो पशुवध का अर्थ बतानेवाला नाम यज्ञके पर्याय नामोंमें होना चाहिये। परंतु वैसा नहीं है देखिये "यज्ञ" शब्द (१) देवपूजा, (२) संगति करण और (३) दान, ये तीन इस शब्दके अर्थ हैं। देवताओंका सत्कार करना, जनतामें संगति अर्थात् एकीकरण करना, और परोपकार करना ये इस शब्दके अर्थ हैं। जनता के संगति करण का भाव राष्ट्रिय दृष्टिका महत्त्वपूर्ण भाव है और यह सूचित करता है कि यज्ञसंस्था सचमुच राष्ट्रीय संस्था है।

दूसरा यज्ञ वाचकशब्द "प्रजा-पति" है। प्रजा पालनका कर्तव्य यह बता रहा है। संपूर्ण जनता के पालन का संबंध होनेसे यह शब्द राष्ट्रीय भावना ही प्रबलतासे बता रहा है।

यज्ञके पर्याय शब्द निघण्टु १।७ में दिये हैं। यहां यज्ञ नामों में "अ-ध्वर" शब्द है। इसका अर्थ "अ---हिंसा" ही है। "ध्वर" शब्द हिंसा वाचक है उसका निषेध करनेवाला अध्वर है। इसी "अध्वर" शब्दसे "अध्वर्यु" शब्द बनता है और यह अध्वर्यु यज्ञके याजकों में प्रमुख है। अहिंसामय कर्मोंको जो करता है वही अध्वर्यु होता है। यजुर्वेदका नाम भी अध्वरवेद है अर्थात् अहिंसामय कर्मका उपदेश करनेवाला वेद। ये शब्द देखने से यज्ञमें हिंसा का अभाव ही प्रतीत होगा।

यज्ञ वाचक शब्द वेदमें बहुत हैं, उन में "मेध" एक शब्द है जिसमें "हिंसा" का अर्थ अल्प अंश से है। नरमेध, अश्वमेध, गोमेध, अजमेध इन शब्दोंमें उक्त प्राणियोंकी हिंसा अभीष्ट है ऐसा श्रौत कर्म करनेवालों का पक्ष है परंतु-

नृयज्ञो अतिथिपूजनम्॥ — मनुस्मृति।

"नृयज्ञ, नरमेध का अर्थ अतिथि पूजन ही है" यदि नरयज्ञ अतिथि-

तेरे पास हैं, तब तक अर्जुन क्या, साक्षात् इंद्र भी तुझे नहीं हरा सकते ; पर अर्जुन को मारने की तेरी प्रतिज्ञा सुनकर—पांडवों का भला करने की नियत से—इंद्र किसी छल से ये कवच और कुंडल ले लेना चाहते हैं। इसलिये मैं तुझे सावधान किये देता हूँ कि जिस समय इंद्र ब्राह्मण बनकर तेरे पास आवें और इन दोनों चीज़ों को माँगने लगें, उस समय तू और चाहे जो कुछ उनको दे दे ; पर ये कवच और कुंडल मत देना, नहीं तो तू अर्जुन से न जीत सकेगा।" दूसरे दिन कर्ण ने उपासना करते समय सूर्य से कहा—"हे पिता, हे भुवन-भास्कर, आपकी मेरे उपर बड़ी कृपा है, जो आप मेरा इतना ख़याल रखते हैं। पर मैं किसी तरह भी अपने व्रत से नहीं टल सकता। अगर इंद्र मेरे पास कवच और कुंडल लेने आएँगे, तो मैं कभी इनकार न करूँगा, फौरन दे दूँगा। अगर ऐसा नहीं करूँगा, तो मेरी प्रतिज्ञा भंग हो जायगी ; क्योंकि प्रतिज्ञा तोड़नेवाला घोर नरक में जाता है, उसका संसार में जीवित रहना ही व्यर्थ है। जब मैं एक बार प्रतिज्ञा कर चुका हूँ, तो इंद्र क्या, अगर अर्जुन भी ये कवच और कुंडल माँगें, तो मैं इनकार न करूँगा। ज्यादा-से-ज्यादा अर्जुन मुझे मार ही डालेंगे न ? पर क्षत्रिय लोग मरने से कब डरते हैं ? इसलिये भगवन्, प्रतिज्ञा भंग करने की सलाह मुझे मत दीजिए।"

जब सूर्य भगवान् ने देखा कि उनका पुत्र अपनी प्रतिज्ञा पर अटल है तथा उनके कहने और मृत्यु के डर से भी उसे भंग नहीं करना चाहता, तो वे बोले—"अच्छी बात है। अगर तुझे अपनी प्रतिज्ञा इतनी प्यारी है, तो इंद्र को ये कवच एवं कुंडल

दे देना ; पर इसके बदले में अर्जुन को मारने के लिये उनकी अमोघ-शक्ति माँग लेना।" कर्ण ने कहा—"बहुत अच्छा, ऐसा ही करूँगा।"

थोड़ी देर के बाद जब उपासना समाप्त हुई, तो वे देखते क्या हैं कि एक ब्राह्मण चुपचाप वहाँ खड़ा है। उन्होंने बड़ी भक्ति से उसे प्रणाम किया और उसकी इच्छा जाननी चाही। वह बोला—"यदि तू सचमुच ऐसा ही दृढ़प्रतिज्ञ है, जैसा कि ढोंग कर रखा है, तो अपने सहजात कवच और कुंडल मुझे दे दे।" कर्ण को खट से सूर्य की चेतावनी याद आई और उन्होंने परीक्षा लेने के मतलब से उस ब्राह्मण से निवेदन किया—"हे ब्रह्मन्, ये कवच और कुंडल तो जन्म से ही मेरे शरीर पर लगे हुए हैं और इसीलिये मेरे शरीर के अंग बन गये हैं। इनसे मेरी रक्षा भी होती है। इनके बिना मेरे शत्रु मुझे सहज ही में मार सकेंगे ; अतएव आप यह हठ छोड़कर कोई दूसरी वस्तु माँग लीजिए। आप जितने ग्राम कहें मैं दूँ, जितने दास-दासी चाहें ले लें ; धन-कोष, मणि-मुक्ता, अन्न-वस्त्र आदि जो कुछ भी, और जितनी भी चाहें, मैं देने को तैयार हूँ।" पर ब्राह्मण देवता ने अपना विचार न छोड़ा। तब कर्ण कहने लगे—"हे देवराज इंद्र, मैं आपको पहचान गया हूँ। इसीलिये आपके कवच और कुंडल माँगने पर आश्चर्य नहीं होता ; क्योंकि सूर्य भगवान् मुझे पहले से ही चेतावनी दे चुके हैं। पर सोच लीजिए, इसमें आपका क्या लाभ होगा? कवच और कुंडल दे देने से मेरी कीर्ति तो संसार-भर में फैल जायगी, लेकिन जब शत्रु मुझे सहज

ही में मार डालेंगे, तो यह कहकर क्या आपका अपयश न होगा कि आपने मेरे साथ छल किया था ? ख़ैर, इन्हें तो मैं आपको दिये ही देता हूँ ; पर बदले में मुझे आप भी कोई ऐसा अस्त्र दीजिए, जो शत्रु को मारे बिना न लौटे ।"

इंद्र ने उत्तर दिया—"हे महाबाहु, तुम जिस शत्रु को मारने की सोच रहे हो, उसके रक्षक स्वयं नारायण हैं—तुम्हारी दाल न गलेगी । फिर भी वज्र को छोड़कर तुम जो अस्त्र माँगो, मैं देने को तैयार हूँ ।" कर्ण ने उनसे अमोघ-शक्ति लेने की इच्छा प्रकट की । इस पर इंद्र बोले—"अच्छी बात है, मैं वह शक्ति तुम्हें दे दूँगा । पर याद रखना कि चलाई जाने पर वह शक्ति शत्रु को मारने के बाद मेरे पास लौट आती है । इसलिये उसके द्वारा तुम एक ही शत्रु को मार सकोगे । दूसरी बात यह कि उसका प्रयोग तभी करना, जब प्राणों का संकट हो, नहीं तो वह तुम्हें ही मार डालेगी ।"

कर्ण ने इंद्र को प्रणाम करके उनसे वह शक्ति ले ली और एक तेज़ हथियार से अपना चमड़ा काटकर खून से भीगे हुए कवच और कुंडल उनके हाथ में दे दिये । उस समय क्षणभर के लिये भी न तो उस वीर का मुँह ही फीका पड़ा और न हाथ ही काँपा । न तो मन में पश्चात्ताप ही हुआ और न मुँह से उफ़ ही निकली । यह भयंकर काम देखकर कर्ण के ऊपर स्वर्ग से फूल बरसने लगे और देवता लोग उनकी स्तुति-प्रशंसा करने लगे । तभी से इस महावीर का नाम कर्ण पड़ गया ।

उधर इंद्रदेव यह सोचते हुए चले गए कि अब कर्ण अर्जुन को न मार सकेगा ।

इस तरह इंद्र ने कर्ण के साथ छल करके कवच और कुंडल ले लिये, पर इससे कर्ण की बड़ी कीर्ति हुई; क्योंकि साधारण मनुष्य इतना बड़ा त्याग नहीं कर सकता। उनका यश पहले से भी सौगुना अधिक चारों तरफ़ फैल गया। दुर्योधन आदि बड़े दुखी हुए; लेकिन उन्होंने कर्ण से कुछ कहा नहीं; क्योंकि उन्हें कर्ण की दृढ़ प्रतिज्ञा पहले से ही मालूम थी। हाँ, पांडवों को जरूर बेहद ख़ुशी हुई। अर्जुन मन में सोचने लगे कि अब वे सहज ही में कर्ण को मार सकेंगे। युधिष्ठिर की बड़ी भारी चिंता दूर हुई।

पर स्वयं कर्ण के मन में तनिक भी मैल नहीं, मानों कोई बात ही न हुई हो। वह भी दान क्या कि बाद में पछताना पड़े!

आठवाँ परिच्छेद

पिछले परिच्छेद की घटनाएँ पांडवों के वनवास के बारहवें वर्ष की थीं। जब तेरहवाँ वर्ष लगा, तब वे लोग अज्ञातवास करने के लिये वेष बदलकर मत्स्यदेश के राजा विराट के नगर में गए और उनके यहाँ नौकरी करने लगे। दुर्योधन ने उनका पता लगाने की बहुत कोशिश की, हजारों जासूस चारों ओर भेजे, नगर-नगर और ग्राम-ग्राम राई-रत्ती करके छान डाले; पर सब व्यर्थ हुआ। पता न चला, तो नहीं ही चला। अगर चल जाता, तो फिर उन बेचारों को १२ वर्ष वन में काटने पड़ते।

राजा विराट पर हमला

इसपर भीष्म और कृपाचार्य ने कहा—"पांडव ऐसे मूर्ख नहीं, जो अपना पता लग जाने दें। वे लोग अवश्य ही वेष बदले हुए किसी धर्मात्मा राजा के आश्रय में अज्ञातवास के दिन पूरे कर रहे होंगे। उनको ढूँढ़ निकालना कोई सहज काम नहीं।"

इसी बीच में दासी-वेषधारी द्रौपदी का अपमान करने पर रसोइया बने हुए भीम द्वारा राजा विराट के साले महाबली कीचक के मारे जाने का समाचार हस्तिनापुर पहुँचा। उसी कीचक की सहायता से राजा विराट ने त्रिगर्तराज सुशर्मा को कई बार बुरी तरह से परास्त किया था। इस समय त्रिगर्तराज ने सोचा कि विराट से बदला लेने का बड़ा अच्छा मौक़ा है।

इससे उन्होंने दुर्योधन को गौएँ तथा अन्न-धन आदि लूट में मिलने का लोभ देकर विराट पर हमला करने के लिये उकसाया। साथ ही उन्होंने यह भी सुझाया कि अगर सेना-सहित राजा विराट हाथ में आ जायँगे, तो साम्राज्य की शक्ति और भी बढ़ जायगी। कर्ण को भी यह सलाह पसंद आई। वे बोले—"यदि बुद्धिमानों में श्रेष्ठ द्रोण, भीष्म और कृपाचार्य भी राजी हो जायँ, तो इस काम में देर न करनी चाहिए। दरिद्र और निर्बल पांडवों की खोज में समय नष्ट करने से यह कहीं अच्छा है कि अपना बल बढ़ाया जाय।"

निदान बड़े-बूढ़ों की राय ली गई और राजा विराट के ऊपर हमला करने के लिये एक ओर से त्रिगर्तराज तथा दूसरी तरफ़ से भीष्म-द्रोण-सहित कौरव लोग रवाना हुए।

त्रिगर्तराज ने पहले विराट-नगर में पहुँचकर वहाँ के गो-रक्षकों को मार पीटकर गौएँ छीन लीं और लेकर चल दिए। रक्षक लोग रोते-कलपते राजा विराट की सभा में पहुँचे। तुरंत ही सेना तैयार कराने की आज्ञा दी गई और जितने भी पुरुष युद्ध करने के लायक थे, उन सबको साथ लेकर क्रोध में भरे हुए, राजा विराट त्रिगर्तराज से लड़ने के लिये चल दिए। इतने में ही कौरव लोगों ने वहाँ पहुँचकर बड़ा उत्पात मचाया। बहुत-सी गौएँ छीन लीं और उन्हें सेना के आगे किये हुए लौटकर चल दिए। अब समस्या यह पैदा हुई कि कौरवों से लड़ने कौन जाय। अंत में बृहन्नला बने हुए अर्जुन को अकेले ही इस काम के लिये भेजा गया। उनके शंख की ध्वनि सुनते ही कौरव-सेना ने उन्हें दूर से ही पहचान लिया और उन लोगों में बड़ी

खलबली मच गई। एक प्रकार से कहना चाहिए कि उनके हाथ-पैर फूल गए। द्रोणाचार्य बोले—"कौरवों ने पांडवों के साथ जो अत्याचार किये हैं, उनका फल आज अवश्य मिलेगा। वीर अर्जुन के सामने सबको हार माननी पड़ेगी। हमारी सेना में कोई योद्धा ऐसा नहीं, जो उसके सामने ठहर सके। चारों ओर से जो अपशकुन हो रहे हैं, उनका भी यही मतलब है कि हम लोगों की बुरी तरह से हार होगी।"

यह सुनकर कर्ण ने कहा—"इस समय आचार्य की बातों पर ध्यान देने की जरूरत नहीं, जो होगा सो देखा जायगा। हम लोगों को चाहिए कि व्यूह बनाकर युद्ध के लिये तैयार हों। आचार्य को अर्जुन बहुत प्यारे हैं, इसलिये वे बार-बार उनकी बड़ाई करके हम लोगों को डराना चाहते हैं। मैं जिसको देखता हूँ, उसको भयभीत पाता हूँ; पर भय की कोई बात नहीं है। मैं अर्जुन को सहज में ही हरा दूँगा। मेरे धनुष से छूटे हुए पैने बाण कभी खाली नहीं जाते। तेरह वर्ष से अर्जुन मुझे युद्ध में हराने के लिये बहुत उत्सुक हैं। इसी से बड़ी उमंग में भरे हुए आ रहे हैं। पर मैं उन्हें दिखा दूँगा कि मैं भी मिट्टी का पुतला नहीं हूँ। आज मेरे सामने अर्जुन को धूल फाँकनी पड़ेगी। मैं उन्हें मारकर अपनी प्रतिज्ञा भी पूरी कर लूँगा और दुर्योधन से उऋण भी हो जाऊँगा। मैंने धनुर्वेद के सबसे बड़े आचार्य महर्षि परशुराम से अस्त्र-विद्या सीखी है, उनके तथा अपने बाहुबल से मैं देवेश इंद्र से भी लोहा ले सकता हूँ। अर्जुन चीज ही क्या है?"

कर्ण को ऐसी लंबी-चौड़ी हाँकते हुए सुनकर कृपाचार्य

से न रहा गया। वे बोले—"हे सूतपुत्र, तुम्हें युद्ध बहुत पसंद है, परंतु तुम यह नहीं सोचते कि आगे चलकर क्या नतीजा निकलेगा और अपना काम कैसे बनेगा। अर्जुन हम सबको अकेले ही हरा सकता है। मेरी समझ में तो इस समय अर्जुन के साथ तुम्हारा युद्ध न करना ही अच्छा है। क्या तुम्हें मालूम नहीं कि अर्जुन ने कैसे-कैसे महान् कार्य किये हैं? तुमने भी कभी कोई बड़ा काम किया है? सच पूछो तो मुझे तुम्हारी डींग पर हँसी आती है। उचित यही है कि हम सब मिलकर एक साथ अर्जुन के साथ युद्ध करें। एक-एक करके तो हम लोग तिनके की तरह उड़ जायँगे—पता नहीं चलेगा।"

अश्वत्थामा ने भी कर्ण को समझाना चाहा। वे बोले—"अभी न तो हम लोगों ने गौओं पर ही अधिकार कर पाया है और न मत्स्यदेश की सीमा के बाहर ही पहुँच सके हैं। अगर लौटकर हस्तिनापुर पहुँच गए होते, तो तुम्हारा इस तरह की डींग हाँकना ठीक भी होता। तुम्हारी तो बात ही क्या—देवता, गंधर्व, सुर, असुर कोई भी अर्जुन के सामने नहीं ठहर सकता। अगर आचार्य ने अर्जुन की बड़ाई की, तो क्या बेजा किया?"

भीष्म ने यह झगड़ा बढ़ते देख, सबको समझा-बुझाकर शांत किया और स्वयं व्यूह रचना करने लगे। कौरव-सेना का अर्जुन के साथ बड़ा विकट संग्राम हुआ। अर्जुन ने एक-एक करके द्रोण, कृप, कर्ण, अश्वत्थामा आदि सभी महारथियों को बुरी तरह से हराया। ये लोग एक-एक करके अर्जुन के सामने आते गए और हार खा-खाकर वहाँ से भागते गए।

सबसे पहले अर्जुन ने देखा कि सामने ही कर्ण युद्ध करने को तैयार खड़े हैं। वे उधर ही को बढ़े। पर बीच ही में विकर्ण ने हमला करके उन्हें रोकना चाहा। अर्जुन ने बाणों की मार से उसे मूर्च्छित कर दिया। इसके बाद कर्ण के भाई शत्रुंजय से उनका सामना हो गया। थोड़ी ही देर में वह भी मारा गया। अपने भाई का मारा जाना देख कर्ण को बहुत क्रोध हुआ और वे सिंह की तरह अर्जुन की ओर झपटे। दोनों ओर से विकट बाण-वर्षा होने लगी। दोनों अद्वितीय वीर थे। दोनों की हाथों की सफाई देखने योग्य थी। पर अर्जुन के सामने कर्ण की दाल न गली और बुरी तरह घायल होकर उन्हें युद्ध-स्थल से भाग जाना पड़ा।

कर्ण के भाग जाने के बाद अर्जुन दुर्योधन, कृप, द्रोण, अश्वत्थामा आदि से युद्ध करते रहे और उन्होंने एक-एक करके सभी को हरा दिया।

इतने में कर्ण फिर लौटकर युद्ध-भूमि में अर्जुन के सामने आ गए। यह देख अर्जुन बोले—"हे कर्ण, पहले कौरवों की सभा में तूने शेखी के साथ कहा था कि मेरे समान कोई योद्धा नहीं। अब मैं तेरा बाहुबल देखूँगा। आज के बाद फिर कभी तू डींग न मारेगा। जुआ-घर में तू द्रौपदी की दुर्दशा पर बहुत हँसा था। आज तुझे उसका फल मिलेगा। अब तक तो मैं प्रतिज्ञा के बंधन में फँसा था; पर आज मैं तेरे दुष्कर्मों का भरपूर बदला दिए बिना न छोड़ूँगा। आ—सँभल जा।"

कर्ण बोले—"हे अर्जुन, जो मुँह से कह रहे हो, उसे कर दिखाओ। तुम्हारी तो बात ही क्या, इंद्र भी इस समय मुझे नहीं

हटा सकते। तुमसे करते-धरते कुछ नहीं बनता—यों ही डून की हाँकते हो। नहीं तो क्या द्रौपदी की दुर्दशा चुपचाप बैठे-बैठे देखते रहते। तुम्हारी भी युद्ध की साध आज मिट जायगी—तुम आज मेरा बल-पराक्रम देख लोगे।"

अर्जुन ने कहा—"रे सूतपुत्र, तू अभी-अभी मेरे सामने से हारकर भाग चुका है। फिर भी डींग मारता है। अपने भाई को आँखों के सामने मरते देखकर भी तुझसे कुछ करते-धरते न बना। रे कायर, तू क्या बढ़-बढ़कर बातें मारता है?"

यह कह अर्जुन ने कर्ण के ऊपर बाण छोड़ना शुरू किया। कर्ण ने भी उत्तर दिया। घमासान युद्ध छिड़ गया। थोड़ी देर में अर्जुन के दस्ताने कट गए और घोड़े भी घायल हो गए, पर वे घबराए नहीं। उन्होंने बड़े पैने बाणों की मार से कर्ण का एक तरकस काट डाला। कर्ण ने तत्काल दूसरे तरकस में से बाण निकालकर अर्जुन के हाथों में मारे। अर्जुन की मुट्ठी ढीली पड़ गई। फिर भी उन्होंने कर्ण का धनुष काट डाला। तब कर्ण ने एक महाभयंकर शक्ति उठाकर अर्जुन पर चलाई, पर वीर अर्जुन ने उसे अपने बाणों से रोक दिया। इसके बाद उन्होंने कर्ण के रथ के घोड़े मार गिराए और उनके ऊपर बड़े भयंकर बाण छोड़े कि बाण कर्ण के कवच को फोड़कर शरीर में घुस गए और कर्ण मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। कुछ देर बाद होश आया, तो वे पीड़ा के मारे युद्ध-भूमि छोड़कर चले गए।

इसके बाद वीर अर्जुन ने संमोहन-अस्त्र के प्रयोग से कौरव-सेना को बेहोश करके; बड़े-बड़े महारथियों के रंग-बिरंगे

वस्त्र उतार लिए और हरण की हुई गाएँ लेकर विराट-नगर को लौट गए।

इस युद्ध में कौरवों को बुरी तरह से मुँह की खानी पड़ी। कर्ण का सारा घमंड चूर हो गया। पर कर्ण की वीरता का लोहा अर्जुन भी मान गए। वे समझ गए कि कर्ण कोई साधारण योद्धा नहीं। परिणाम यह हुआ कि कौरव लोग खाली हाथ—बल्कि यों कहना चाहिए कि संख्या में बहुत-कुछ कम होकर—हस्तिनापुर को लौट गए।

इस समय वनवास और अज्ञातवास के मिलकर तेरह वर्ष पूरे हो चुके थे; अतएव एक ओर युधिष्ठिर और दूसरी ओर दुर्योधन अपने-अपने दूतों को भेजकर इष्ट-मित्रों तथा अधीन राजाओं को युद्ध में सहायता देने के लिये पक्का करने लगे। दुर्योधन और अर्जुन एक साथ ही तथा एक ही मतलब से द्वारका पहुँचे। वहाँ अर्जुन ने तो श्रीकृष्ण को अपना सारथी बनने के लिये राजी कर लिया और दुर्योधन एक अर्बुद नारायणी-सेना लेकर प्रसन्न-चित्त लौट आए।

युद्ध की तैयारी

इसके बाद दुर्योधन ने एक बड़ी चालाकी का काम किया। धोखा देकर उसने युधिष्ठिर के मामा मद्र-नरेश महाबली शल्य को अपने पक्ष में कर लिया। पर शल्य हृदय से पांडवों पर प्रीति रखते थे। वे युधिष्ठिर से जाकर मिले और उनसे दुर्योधन की चालबाजी का सब हाल कह दिया। युधिष्ठिर बोले—"हे मामा, जब आप वचन दे चुके हैं, तो अच्छी बात है—उधर से ही लड़िए। पर एक प्रार्थना है कि अगर कभी कर्ण सेनापति

हों, तो उनके सारथी बनकर आप उनका तेज कम करें और जैसे बने वैसे उनके युद्ध में विघ्न डालें, जिससे अर्जुन की रक्षा हो।" शल्य ने यह बात स्वीकार कर ली।

धीरे-धीरे कौरवों की ओर ग्यारह और पांडवों की ओर सात अक्षौहिणी सेनाएँ इकट्ठी हो गईं। तब भी युधिष्ठिर ने शांति बनाए रखने की चेष्टा की। उन्होंने द्रुपद के पुरोहित को धृतराष्ट्र की सभा में भेजकर अपने हिस्से का राज्य माँगा, जिससे व्यर्थ जन-संहार न हो। भीष्म इसपर राजी हो गए और पांडवों की न्यायप्रियता की बहुत प्रशंसा करने लगे; पर कर्ण से यह बात न सही गई। वे क्रोध में भरकर भीष्म का अनादर करते हुए उस ब्राह्मण से बोले—"पांडव लोग हमें व्यर्थ ही डराना चाहते हैं। डरकर तो हम एक पग भूमि भी नहीं देंगे।" कर्ण की इस धृष्टता पर भीष्म को बड़ा क्रोध आया और वे कहने लगे—"हे कर्ण, तुम बातों में सदा ही बड़ी वीरता दिखाते हो। क्या तुम्हें याद नहीं कि जब विराट के साथ युद्ध हुआ था, तो अकेले अर्जुन ने हमारे छः महारथियों को हरा दिया था। अगर हम लोग उस ब्राह्मण की बात नहीं मानेंगे, तो लड़ाई के मैदान में निश्चय ही धूल फाँकेंगे।"

संधि की चेष्टा

धृतराष्ट्र को भीष्म की सलाह बहुत ही पसंद आई। उन्होंने कर्ण को डाट-डपटकर चुप कर दिया और संधि की बातचीत करने के लिये संजय को पांडवों के पास भेजा।

युधिष्ठिर ने बड़े प्रेम से संजय का स्वागत किया और सब कौरवों की कुशल-क्षेम पूछने के बाद उनके आने का मतलब जानना चाहा। धृतराष्ट्र की संधि करने की इच्छा देखकर उन्हें

बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने चलते समय संजय के द्वारा धृतराष्ट्र, भीष्म, विदुर आदि सभी पूज्य लोगों के लिये बड़ी भक्ति और नम्रता से पूर्ण संदेश भेजे। अंत में उन्होंने यहाँ तक कह दिया—"अगर हम पाँच भाइयों को पाँच गाँव ही दे दिए जायँ, तो भी हम युद्ध नहीं करेंगे।"

संजय ने लौटकर ये सब बातें भरी सभा में धृतराष्ट्र से कहीं। सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए। पर दुर्योधन स्वभाव से ही क्रोधी होने के कारण इन बातों को सहन न कर सका और कहने लगा—"जब तक वीरवर कर्ण हमारे सहायक हैं, हम अर्जुन, भीम आदि किसी से नहीं डरते।" दुर्योधन की बात खतम भी न होने पाई थी कि कर्ण उठकर खड़े हो गए और धृतराष्ट्र से कहने लगे—"हे महाराज, अस्त्र-विद्या के सबसे बड़े आचार्य महात्मा परशुराम हैं। उन्हीं से हमने शिक्षा पाई है। इस युद्ध में प्रधान-प्रधान पांडवों को मारने का हम बीड़ा उठाते हैं।" यह सुनकर भीष्म दुर्योधन से कहने लगे—"हे दुर्योधन, तुम किस घमंड में भूले हुए हो? जब शंख-चक्र-गदा-पद्म-धारी भगवान् कृष्ण को और गांडीव धारण करनेवाले महाबाहु अर्जुन को एक रथ पर बैठा देखोगे, तब तुम्हें मेरा उपदेश याद आवेगा। कहा मान लो—नहीं तो याद रखो; कौरव-वंश का नाश हो जावेगा। अब भी समय है। चेत जाओ तो अच्छा है। तुम्हारे भाई तुम्हारे कहने में हैं; पर न जाने क्यों परशु-राम के शाप से कलंकित इस सूतपुत्र कर्ण और पापात्मा शकुनि की सलाह ही तुम्हें पसंद आती है।" कर्ण बोले—"पितामह, आप फिर ऐसी बात मुँह से न निकालिएगा।

मैं अपने धर्म से भ्रष्ट नहीं हूँ—क्षत्रिय-धर्म का पालन कर रहा हूँ और दुर्योधन को उसी के अनुसार सलाह देता हूँ। मुझमें ऐसा कोई दोष नहीं, जिसके लिये आप मुझे भली-बुरी सुनाते हैं। मैंने आज तक दुर्योधन का बुरा नहीं चाहा। मित्र-धर्म निभाने के लिये, उनके भले के लिये मैं सहर्ष अपने प्राण तक दे सकता हूँ। पांडवों के साथ हम लोगों का विरोध पहले से ही है—अब मेल कैसा? रही परशुराम के शाप की बात, सो मैंने नीच-कर्म नहीं किया था। विद्या सीखने के लिये, ब्रह्मास्त्र प्राप्त करने के लिये ही मैंने झूठ बोला था और बाद में फिर परशुरामजी को अपनी सेवा से प्रसन्न कर लिया था। उनकी सिखाई हुई विद्या अभी भूली नहीं है; क्योंकि मेरा अंतकाल अभी दूर है। मैं सब सहायकों के साथ पांडवों को मारकर दुर्योधन का मार्ग निष्कंटक कर दूँगा। आप, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य आदि सब यहीं बैठे रहिए—मैं अकेला ही काफ़ी हूँ।"

कर्ण की ये बातें भीष्म को बहुत बुरी लगीं। वे जानते थे कि कर्ण ही के बल पर दुर्योधन अकड़ा फिरता है और पांडवों [illegible] ले रहा है। इसलिये कर्ण को ही सब झगड़े की जड़ समझकर, उन्हें बहुत क्रोध हुआ और वे उसकी निंदा करने लगे—"हे कर्ण, मालूम होता है तुम्हारे सिर पर काल मँड़रा रहा है, नहीं तो तुम इस तरह की अंट-संट बातें न बकते। तुम बल और वीरता में पांडवों के पासंग बराबर भी नहीं। जैसे-जैसे वीरता के काम वे कर चुके हैं, वैसे तुमने भी कभी किए हैं? न जाने किस बल पर तुम हमेशा दुर्योधन को पांडवों के खिलाफ़ भड़काते रहते हो। क्या तुम्हें सूझता नहीं कि तुम्हारी

यह सलाह कौरव-वंश का नाश कर देगी ? धिक्कार है तुम्हें !"

भीष्म की ये तीखी बातें सुनकर कर्ण के आग ही तो लग गई। उन्होंने अपने सारे अस्त्र-शस्त्र फेंक दिए और बोले—"हे पितामह, मैं मानता हूँ कि पांडव लोग अद्भुत वीर हैं ; लेकिन इस भरी सभा में आपने जो कठोर वचन मुझसे कहे हैं, उनका भी फल सुन लीजिए। देखिए, मैंने अपने सारे अस्त्र-शस्त्र फेंक दिए हैं। जब तक आप जीते रहेंगे, मैं इनको हाथ भी नहीं लगाऊँगा। सारा संसार जानता है कि मैं अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ता। युद्ध में आपके न रहने पर मैं अपना पराक्रम प्रकट करूँगा और पांडवों को हराकर दिखा दूँगा।" इतना कहकर महाधनुर्धारी कर्ण तुरंत सभा-भवन से बाहर निकलकर अपने घर को चले गए। उनके इस तरह चले जाने से दुर्योधन को बहुत दुःख हुआ। लोगों ने बहुतेरा समझाया ; पर उन्हें धीरज न हुआ और वे बैठकर क्रोध और शोक के आँसू बहाने लगे। निदान उदास मन से धृतराष्ट्र ने उस दिन की सभा भंग कर दी।

जब पांडवों को संजय के द्वारा भेजे हुए अपने प्रस्ताव का बहुत दिनों तक कोई जवाब नहीं मिला, तो वे समझ गए कि युद्ध जरूर होगा और जी-जान से उसकी तैयारी करने में लग गए। पर कृष्ण ने कहा—

कृष्ण का दूतत्व

"अच्छा एक बार मुझे भी शांति की चेष्टा करने दो। मैं हस्तिनापुर जाता हूँ। देखूँ मेरे कहने का कुछ असर होता है या नहीं।" युधिष्ठिर ने उनकी बात मान ली। वे गए और धृतराष्ट्र की सभा में पांडवों के जन्म-भर के कष्टों का बड़ा करुणापूर्ण वर्णन करके दुर्योधन को दोषी ठहराया। वे बोले—

"पांडव इतने संतोषी और क्षमाशील हैं कि अपने हिस्से का राज्य छोड़कर केवल पाँच-गाँव—नगर भी नहीं—ले लेने को तैयार हैं। दे दो तो अच्छा है, नहीं तो याद रखो युद्ध होगा और कौरव-वंश समूल नाश हो जायगा; क्योंकि पांडवों को हराने वाला इस संसार में कोई नहीं।" धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण, गांधारी आदि सबने कृष्ण की बात का समर्थन किया और दुर्योधन को बहुतेरा समझाया, पर उसने किसी की न सुनी और कृष्ण से कहने लगा—"पाँच गाँव तो क्या सुई की नोक के बराबर भूमि भी पांडवों को न दूँगा।"

निदान कृष्ण निराश होकर वहाँ से लौटने लगे, पर चलते-चलते भी उन्होंने कर्ण को समझा-बुझाकर ठीक रास्ते पर लाने की चेष्टा की और इसी मतलब से उन्हें अपने साथ नगर के बाहर तक ले गए। वे कहने लगे—"कर्ण, तुम बड़े विद्वान् और ज्ञानवान हो। पर तुम्हें शायद अभी तक यह नहीं मालूम कि तुम सूतपुत्र नहीं, बल्कि सूर्य के वरदान से उत्पन्न कुंती के पुत्र हो। अतएव पांडवों के भाई और सब में जेठे हो। तुम मेरा कहना मानो। कौरवों का पक्ष छोड़ दो और अपने भाइयों को अपनाओ। देखो, वे किस तरह जी-जान से तुम्हारी सेवा करते हैं। बड़े होने से राजगद्दी के अधिकारी भी तुम्हीं हो। तुम और अर्जुन जब एक हो जाओगे, तो किसमें इतनी सामर्थ्य है कि तुम लोगों का बाल भी बाँका कर सके? तुम चिरकाल तक अकंटक राज्य कर सकोगे। इसलिये मेरी प्रार्थना है कि यह कहना मानो और अपनी माता के हृदय को क्लेश न पहुँचाओ।"

कर्ण ने उत्तर दिया—"हे यादव श्रेष्ठ, मैं जानता हूँ कि मैं

कुंती का पुत्र हूँ; पर सोचिए तो, पैदा होने पर उन्होंने मेरे साथ कैसा क्रूर बर्ताव किया। अगर अधिरथ ने दया करके मुझे नदी में से न निकाला होता, तो अब तक मैं जीवित भी न रहता। उन्हीं ने मेरा पालन-पोषण किया, सब संस्कार किए और विवाह करवा दिया। मेरे कई-एक पुत्र हैं। अब बताइए, किस तरह उनका अहसान भुला दूँ और अपने स्त्री-पुत्रों की मोह ममता छोड़ दूँ? इसके सिवा एक बात और भी है। राजा दुर्योधन मेरे मित्र हैं। उनकी कृपा से मुझे अंगदेश का राज्य मिला और मैं सब तरह से सुख भोग रहा हूँ। अगर मैं उन्हें छोड़कर पांडवों की ओर चला जाऊँ, तो मुझसे बढ़कर कृतघ्न और नीच कौन होगा? फिर मेरी प्रतिज्ञा भी आप सुन ही चुके होंगे कि सम्मुख-युद्ध में मैं अर्जुन को मारूँगा। अगर इस समय मैं कौरवों को छोड़कर पांडवों की ओर चला जाऊँ, तो सारा संसार यही समझेगा कि मैं अर्जुन से डर गया, और मेरी प्रतिज्ञा भी टूट जायगी। इसलिये मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप इस विषय में मुझसे कुछ न कहें, नहीं तो कोमल-चित्त न्यायप्रिय युधिष्ठिर एकदम मेरे लिये राज्य छोड़ देंगे। पर वह बेकार जायगा—मैं उसका भोग न कर सकूँगा, क्योंकि अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार मुझे वह राज्य दुर्योधन को दे देना पड़ेगा—और ऐसा करना मैं ठीक नहीं समझता। मेरी तो हार्दिक कामना है कि चिरकाल तक युधिष्ठिर ही उसका भोग करते रहें।"

कर्ण की ये बातें सुनकर कृष्ण बोले—"हे कर्ण, मैंने तुम्हें इतना बड़ा राज्य देना चाहा, पर तुमने न लिया। इससे मालूम होता है कि अब युद्ध नहीं रुक सकता। खैर, तुम यहाँ से लौट

जाओ और जाकर भीष्म, द्रोण आदि से कहना कि यह ऋतु युद्ध के लिये बहुत अच्छी है। इससे शीघ्र ही तैयारी करके युद्ध का श्रीगणेश कर दें। जब तुम सब लोग युद्ध में आखिरी शय्या पर सोना चाहते हो, तो वही होगा—इसमें संदेह नहीं। राजा दुर्योधन के जितने पक्षपाती हैं, उनमें से एक भी जीता नहीं बचेगा।

कर्ण बोले—"हे कृष्ण, मैं आपसे विदा होता हूँ। युद्ध के मैदान में फिर आपके दर्शन होंगे। उसके बाद या तो इस महा-युद्ध से बचकर ही आपसे मिलूँगा या फिर स्वर्ग में ही यथा समय भेंट होगी।" यह कहकर उन्होंने कृष्ण को गले लगाया और उदास-चित्त हस्तिनापुर को लौट आये।

कृष्ण की इस असफलता को देखकर विदुर बड़े दुखी हुए। समझ गये कि कौरवों का नाश हुए बिना नहीं रहेगा। जाकर उन्होंने कुंती से सब हाल कहा। कुंती भी बहुत दुखी हुईं और एक गहरी साँस लेकर चिंता में डूब गईं। वे जानती थीं कि दुर्योधन का सबसे बड़ा सहायक और अर्जुन का सबसे बड़ा शत्रु कर्ण ही है। अतएव उसको पांडवों की ओर मिलाने का उन्होंने निश्चय किया। वे सोचने लगीं—"अगर उसके जन्म का सच्चा-सच्चा हाल उससे कह दूँ, तो वह जरूर ही मेरा कहना मान लेगा।" निदान वे कर्ण से मिलने के लिये गंगातट की ओर चल पड़ीं।

कुंती-कर्ण संवाद

वहाँ पहुँचकर क्या देखती हैं कि उनके पुत्र कर्ण पूर्व दिशा को ओर मुँह किए आसन जमाए वेद-पाठ कर रहे हैं। उन्होंने विघ्न डालना ठीक नहीं समझा और कर्ण के पीछे खड़ी होकर पाठ समाप्त होने की राह देखने लगीं। दोपहर तक कर्ण यों ही

बैठे-बैठे पाठ करते रहे और कुंती उनके पीछे खड़ी रहीं। जब सूर्य पश्चिम की ओर को ढलने लगे, तो कर्ण ने भी अपना मुँह उसी ओर को घुमाया। उस तरफ़ मुँह होते ही उन्हें कुंती दिखाई पड़ीं। कर्ण को बड़ा विस्मय हुआ, पर फौरन ही उन्होंने कुंती को नमस्कार किया और हाथ जोड़कर बोले—"देवि, अधिरथ और राधा का पुत्र कर्ण आपको प्रणाम करता है। कहिए, आप किसलिये यहाँ पधारी हैं ?"

कुंती ने जवाब दिया—"बेटा, तुम्हारा जन्म सूतकुल में नहीं हुआ है। तुम अधिरथ और राधा के नहीं, बल्कि सूर्य के वरदान से उत्पन्न मेरे पुत्र हो। जिस समय मैं कन्या थी, उसी समय तुमको पाया था। इसलिये शास्त्रानुसार तुम महात्मा पांडु के ही पुत्र हो। पर न जाने क्यों अपने भाइयों का साथ छोड़कर दुर्योधन की सहायता करते रहते हो। यह क्या कोई अच्छी बात है ? माता-पिता को प्रसन्न रखना पुत्र का सबसे बड़ा धर्म है। इससे मेरी इच्छा है कि अपने भाइयों के छल-कपट से हरे गए राज्य का उद्धार करके तुम्हीं उसका भोग करो। तुम्हें और अर्जुन को एक हो जाते देख कौरव लोग निश्चय ही तुम लोगों के सामने सिर झुकावेंगे। अगर तुम और अर्जुन एक हो जाओगे, तो कौन ऐसा बड़ा काम है, जो दोनों मिलकर न कर सको ?"

कुंती की बात के समाप्त होने पर कर्ण ने कहा—"मैं आपकी बात नहीं मान सकता। ऐसा करने से मेरी धर्म-हानि होगी। आपके ही कर्म-दोष से मेरी गिनती सूत-जाति में हुई। आपने मेरा त्याग करके क्षत्रिय-वंश में मेरा जन्म व्यर्थ कर दिया। इससे ज्यादा हानि तो कोई शत्रु भी नहीं कर सकता। पहले

तो आपने मेरे साथ माता के समान व्यवहार नहीं किया, अब अपना काम निकालने के लिये पुत्र बनाने चली हैं। देखिए, धृतराष्ट्र के पुत्रों ने मेरा बहुत मान बढ़ाया है, इसलिये आपके कहने से मैं उनके साथ कृतघ्नता नहीं कर सकता। मेरे ही भरोसे वे युद्ध में विजय पाने की आशा रखते हैं—फिर भला मैं किस तरह उन्हें निराश कर सकता हूँ। इसलिये निश्चय मानिए कि दुर्योधन की भलाई के लिये मैं अवश्य पांडवों से युद्ध करूँगा। पर आपकी प्रसन्नता के लिये एक काम कर सकता हूँ—वह यह कि अर्जुन को छोड़ मैं किसी और पांडव को नहीं मारूँगा। आपके पाँच पुत्र फिर भी बने रहेंगे, क्योंकि अर्जुन और मुझमें एक ही मारा जायगा।"

कर्ण के मुँह से इस तरह की खरी-खरी बातें सुनने की कुंती को आशा न थी। वे दुःख से काँप उठीं—उनके मुँह से कुछ जवाब नहीं निकला। अंत में उन्होंने कर्ण को गले लगाकर कहा—"अच्छा बेटा, अर्जुन के सिवा और किसी को न मारने का जो तुमने प्रण किया है, उसे युद्ध के समय भूल मत जाना।" यह कहकर उन्होंने अपनी राह ली। कर्ण भी वहाँ से चलकर नगर में आए।

नवाँ परिच्छेद

दोनों ओर की सेनाएँ प्रसिद्ध कुरुक्षेत्र में आकर डट गईं। दुर्योधन ने अपनी ग्यारह अक्षौहिणी सेना को ग्यारह महारथियों में बाँट दिया, पर उनमें से कर्ण अपनी सेना लेकर अलग ही रहे—युद्ध में शामिल नहीं हुए; क्योंकि वे भीष्म के जीवित रहते युद्ध न करने की प्रतिज्ञा कर चुके थे।

महाभारत-युद्ध

यह घोर युद्ध अट्ठारह दिन तक होता रहा। पहले दिन कौरव-सेना के सेनापति धनुर्धारियों में सर्वश्रेष्ठ महाबली भीष्म पितामह रहे। उनकी मृत्यु होने पर पाँच दिन तक द्रोणाचार्यजी ने इस पद को सुशोभित किया। उनके भी स्वर्ग सिधारने पर दो दिन कर्ण को यह भार उठाना पड़ा और फिर जब वे भी क्षत्रिय-गति को प्राप्त हुए, तो अट्ठारहवें दिन यह जिम्मेदारी का काम मद्रराज शल्य को सौंपा गया।

युद्ध छिड़ने के पहले एक दिन दुर्योधन भीष्म पितामह से कौरवों और पांडवों की सेनाओं के बलाबल की बातचीत कर रहे थे। कर्ण भी मौजूद थे। पितामह ने कहा—"हे दुर्योधन, पांडवों से लड़ने के लिये हमेशा तुम्हें भड़कानेवाले मूर्ख, ईर्ष्यालु, गुणी की निंदा करनेवाले सूतपुत्र कर्ण को तो मैं किसी में गिनता ही नहीं। अर्जुन के मुकाबले में कर्ण कोई चीज नहीं, और तुम देख लेना, यह अवश्य अर्जुन के हाथ से मारा जायगा।" द्रोणाचार्य ने भी भीष्म की हाँ-में-हाँ मिलाई और

कहा—"कर्ण वैसे तो बड़ी डींग मारता है, पर आज तक अर्जुन के साथ जब-जब युद्ध करना पड़ा, तब-तब इससे भागते ही बना।"

ये बातें सुनकर कर्ण आग-बबूला हो गए और भीष्म-पितामह से कहने लगे—"आप अकारण ही मुझसे द्वेष मानते हैं और व्यर्थ ही बुरी-भली सुनाते रहते हैं। साथ ही आप कायर कहकर मेरा अपमान किया करते हैं। लेकिन मैं दुर्योधन का ख्याल करके आपकी सब बातें सह लेता हूँ। असल बात तो यह है कि मेरे गुणों के कारण ही आप मुझसे द्वेष मानते हैं और युद्ध के समय भी मेरी निन्दा करके आपस में फूट का बीज बोना चाहते हैं। पर याद रखिये, क्षत्रियों में बाहुबल की ही तारीफ़ होती है—सफ़ेद बालों की नहीं।" इसके बाद उन्होंने दुर्योधन की ओर मुँह करके कहा—"आप पितामह को त्याग दीजिये, नहीं तो ये ऐसी-ऐसी बातें कहकर आपकी सेना में असंतोष फैला देंगे और इतनी बड़ी सेना जब एक बार भड़क जायगी, तो उसे वश में लाना कठिन हो जायगा। पर भीष्म भी करें तो क्या करें। बुड्ढे आदमियों की शक्ति हाथ-पैरों में तो रहती नहीं—बस जीभ ही चला करती है। इनसे आप कुछ भी आशा मत रखिये। इनके मरने पर मैं युद्ध करूँगा और दिखा दूँगा कि क्षत्रियपन किसे कहते हैं। अगर मैं अकेला ही आपके शत्रुओं का नाश न कर दूँ तो मेरा नाम नहीं।"

भीष्म बोले—"हे सूतपुत्र, मैं बहुत दिनोंसे जानता था कि इस भीषण संग्राम में मुझी को सेनापति बनना पड़ेगा, इसलिये मैं आपस में फूट या विरोध नहीं होने देना चाहता। नहीं तो,

बता देता कि इन भुजाओं में—जिन्हें तू निर्बल कहता है—तेरे होश ठीक कर देने की शक्ति अब भी है। मैं चाहूँ तो सहज ही में तेरी युद्ध-पिपासा शांत कर सकता हूँ। स्वयं भगवान् परशु-राम जब मुझे नहीं हरा सके, तो तेरी गिनती ही किसमें है। लेकिन बात यही है कि तुझे दंड देने का यह मौक़ा नहीं है और न मेरे हाथ से तेरी मृत्यु ही बदी है। तू तो अर्जुन का शिकार है—जिसकी तू हमेशा बुराई किया करता है। देखना है, उसके सामने भी तेरी जीभ यों ही चलती है या नहीं।"

बात बढ़ती हुई देखकर दुर्योधन ने खुशामद करके दोनों को शांत किया और फिर पितामह से युद्ध-संबंधी सलाह करने लगे। भीष्म और कर्ण के विवाद का हाल सुनकर कृष्ण ने युद्ध आरंभ होने के पहले एक बार फिर कर्ण को पक्ष में लाने की चेष्टा की। पर कर्ण ने उत्तर दिया—"हे केशव, दुर्योधन का पक्ष छोड़ना तो बहुत बड़ी बात है, मैं उनकी इच्छा के विरुद्ध भी कोई काम नहीं कर सकता और उनके भले के लिये अपने प्राण तक दे देने में संकोच न करूँगा।" खैर युद्ध होने लगा।

भीष्मपितामह यद्यपि वृद्ध थे, पर थे बाल-ब्रह्मचारी। उनके समान योद्धा उस समय दूसरा न था—स्वयं परशुरामजी को एक बार उनसे हार माननी पड़ी थी। अतएव जब तक वे सेनापति रहे, बड़ा घोर युद्ध होता रहा। पहले दिन कौरवों की जीत हुई। पांडव बहुत निराश हुए। पर उसके बाद अर्जुन के पराक्रम से रोज पांडवों ही की जीत होती रही। रोज रात्रि को बातचीत करते समय दुर्योधन भीष्म पितामह पर जान-बूझकर पांडवों के साथ रियायत करने का दोष लगाते। बस

समय उनके मुँह से यही निकलता—"अगर कर्ण सेनापति होते, तो हम अब तक सब पांडवों को समाप्त कर चुके होते।" कर्ण भी वहाँ बैठकर दुर्योधन की हाँ-में-हाँ मिलाते और अपनी बेबसी प्रकट करते, क्योंकि अभी भीष्म जीवित थे।

आठ दिन तक यही होता रहा। आठवें दिन रात को फिर दुर्योधन और कर्ण ने भीष्म से वे ही बातें कहीं। पितामह के कान उन बातों को सुनते-सुनते पक गए थे, और खासकर जब उनके मुँह पर ही उनसे ऐसी जली-कटी कही जाती, तो उन्हें भी क्रोध आना स्वाभाविक था। उन्होंने कर्ण को बहुत बुरी-भली सुनाई और कहा—"द्रौपदी के स्वयंवर में तुम अर्जुन के साथ अपना बल आजमा चुके और विराट-नगर के युद्ध में उसका पुरुषार्थ देख चुके, फिर भी तुम्हें उसकी वीरता में संदेह है? उस समय तुमसे कुछ करते-धरते न बन पड़ा था। अब व्यर्थ ही डींग मार रहे हो।" अंत में भीष्म ने प्रतिज्ञा की कि अगले दिन वे ऐसा युद्ध करेंगे, जैसा पहले कभी न हुआ हो।

सचमुच उस नवें दिन के युद्ध में उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दिखाई। उस एक दिन के युद्ध में पांडवों की आधी से ज्यादा सेना काट डाली गई। चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गई। अर्जुन और भीम के किए कुछ भी न हो सका। वृद्ध पितामह की मार के सामने किसी को भी आने का साहस न हुआ। पांडव लोग बहुत दुखी हुए और रात्रि को पितामह के पास यह पूछने के लिये गए कि किस तरह उनको परास्त किया जाय।

वृद्ध पितामह हृदय से पांडवों के साथ सहानुभूति रखते थे और उनकी धर्मशीलता तथा न्यायपरता से संतुष्ट होने के कारण उन्हीं की जीत मानते थे। इसलिये उन्होंने युधिष्ठिर से कह दिया कि अगर उनकी सेना के आगे-आगे द्रुपद-पुत्र शिखंडी रहेगा, तो वे उसपर अस्त्र न उठाएँगे; क्योंकि वह पहले कन्या था, और वीर क्षत्रिय स्त्रियों पर हाथ नहीं उठाते। फल यह हुआ कि दसवें दिन के युद्ध में पांडवों की ओर से जो आक्रमण किया गया, उसमें शिखंडी सबसे आगे था। उसे देखते ही भीष्म ने हथियार रख दिए। फिर क्या था, पांडवों को अच्छा मौक़ा मिला। उन्होंने शिखंडी की आड़ में होकर भीष्मपितामह को वह मार मारी, उनके ऊपर ऐसी विकट बाण-वर्षा की कि उनके शरीर में दो अंगुल जगह भी न बची, जो बाणों से न बिंधी हो। उनके हाथ से धनुष छूट पड़ा और वे अचेत होकर रथ में गिर पड़े। कौरव-सेना में हाहाकार मच गया, योद्धा लोग इधर-उधर भागने लगे। द्रोण, कृप, दुर्योधन आदि सबके मुँह उतर गए और वे लोग 'हाय पितामह' कहकर विलाप करने लगे; पर पांडवों की सेना में शंखनाद होने लगा। वे लोग उछलने-कूदने लगे और एक-दूसरे से गले मिल-मिलकर अपना हर्ष प्रकट करने लगे।

भीष्म का अंत

उस रात को जब और-और लोग भीष्म के दर्शन करके लौट आए, तो वीरवर कर्ण वहाँ पहुँचे। देखते क्या हैं कि वृद्ध पितामह लोहू-लुहान आँखें बंद किए हुए बाणों की शय्या पर पड़े हैं। यह देखकर दयावान कर्ण अपना सब वैर भूल गए—उनकी आँखों में आँसू भर आए। वे हाथ जोड़कर भीष्म के पैरों में

)

गिर पड़े और रुँधे हुए कंठ से बोले—"हे महात्मा, आँखों के सामने होने पर आप हमेशा जिसपर अप्रसन्न होते थे और जिसे निरपराध होने पर भी आप दोष दिया करते थे, वही राधेय कर्ण आपको प्रणाम करता है।" यह सुन भीष्म ने बड़े कष्ट से धीरे-धीरे आँखें खोलीं और चारों ओर दृष्टि करके जब देख लिया कि कर्ण के सिवा और कोई नहीं है, तो इशारे से पहरेदारों को वहाँ से हटाकर कर्ण को छाती से लगा लिया और बड़े प्रेम से कहने लगे—"हे कर्ण, यद्यपि तुमने हमेशा हमारे साथ लाग-डाट रखी है, सदा ही ईर्ष्या-द्वेष करते रहे हो, फिर भी अगर तुम इस समय हमारे पास न आते, तो हमें बहुत ही बुरा लगता। हमें पता चला है कि तुम सूत अधिरथ के नहीं, बल्कि कुंती के पुत्र हो। हम सच कहते हैं कि हमने कभी तुमसे द्वेष नहीं किया; पर हमेशा निरपराध, सरल-प्रकृति और धर्मशील पांडवों का विरोध करते देखकर, हम कभी-कभी कठोर वचन कहकर तुम्हें सीधे मार्ग पर लाने का प्रयत्न करते थे। हम चाहते थे कि तुम्हें अपने कर्तव्य का, अपने तेज का ज्ञान हो जाय। हम बहुत अच्छी तरह जानते हैं कि तुम बड़े भारी वीर और धर्मात्मा हो। पहले जो तुम पर हमारा क्रोध था, वह आज बिल्कुल जाता रहा। हे वीर-शिरोमणि, याद रखो कि होनहार के आगे पुरुषार्थ की कुछ गिनती नहीं; इसलिये सोचो और समझो, वृथा ही और अधिक युद्ध मत करो। अगर तुम अपने सहोदर भाइयों से मेल कर लोगे, तो यह सारा वैर-विरोध सहज ही में मिट जायगा। हमारी इच्छा है कि हमारे प्राणों के खर्च ही से यह युद्ध समाप्त हो जाय।"

कर्ण बोले—"हे पितामह, आपने जो कुछ कहा, सो सब ठीक है। सचमुच ही मैं कुंती का पुत्र हूँ, पर उन्होंने जन्म लेते ही मुझे त्याग दिया था। सूत अधिरथ ने पाल-पोसकर इतना बड़ा किया। इसके बाद दुर्योधन की कृपा से मैं राजा बना, मेरा मान बढ़ा और मुझे सब प्रकार के ऐश्वर्य-भोग प्राप्त हुए। मेरे ही कारण इस विषम वैर की आग जली है और मैं क्षत्रिय-धर्म के अनुसार अर्जुन को मारने या उनके हाथों मरने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। अतएव आप प्रसन्न मन से मुझे युद्ध करने की आज्ञा दें।" भीष्म ने कहा—"हे कर्ण, अगर तुम्हारी यही प्रतिज्ञा है, तो हम आज्ञा देते हैं कि स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा से—अहंकार को छोड़कर—क्षत्रिय-धर्म के अनुसार पांडवों से युद्ध करो।"

इस प्रकार कर्ण भीष्म को प्रणाम करके आँखों से आँसू बहाते हुए दुर्योधन के पास गए और सब हाल कह सुनाया। साथ ही इसके, उन्होंने कौरव-सेना को भी बहुत आशा-भरोसा दिया।

अब यह समस्या पैदा हुई कि भीष्म की जगह किसे सेनापति बनाया जाय। कर्ण ने दुर्योधन से कहा—"वैसे तो अपनी सेना में

सेनापति द्रोण

महाबली महारथियों की कमी नहीं, वे सब सेनापति होने की योग्यता रखते हैं; पर वे आपस में बड़ी ईर्ष्या रखते हैं और इस बात को नहीं सह सकते कि कोई दूसरा उनसे बढ़ जाय। इसलिये मेरी राय से महात्मा द्रोण को सेनापति बनाना चाहिए, क्योंकि उनसे बढ़कर योद्धा दूसरा नहीं।" दुर्योधन को यह

सलाह पसंद आई और उन्होंने विधिपूर्वक द्रोणाचार्य को सेनापति बना दिया। आचार्य बहुत प्रसन्न हुए और बोले—"हे दुर्योधन, तुमने सेनापति बनाकर हमारा बड़ा सम्मान किया है। बताओ तुम्हारी क्या इच्छा है, वही हम करें।" दुर्योधन बोले—"आप किसी तरह युधिष्ठिर को जीवित ही पकड़ लीजिए, जिससे मैं उनके साथ एक बार फिर जुआ खेलकर अपना मतलब साध सकूँ।" आचार्य बोले—"अर्जुन के रहते तो यह काम मुश्किल है। पर हाँ, अगर तुम उन्हें किसी बहाने युद्धस्थल से हटा सको, तो हम इसकी भी चेष्टा कर सकते हैं।"

खैर, सेना ने युद्ध-क्षेत्र की ओर प्रस्थान किया। सबके आगे-आगे कर्ण थे। उनका सिंह के चिह्नवाला और सूर्य के समान चमकीला झंडा कौरवों का आनंद बढ़ाता हुआ फहराने लगा। कर्ण को देखकर योद्धा लोग भीष्म का अभाव भूल गए।

पाँच दिन तक द्रोणाचार्य सेनापति रहे। इस बीच में उन्होंने युधिष्ठिर को पकड़ने की बहुत-सी तरकीबें कीं, पर एक भी तरकीब काम न आई। एक दिन इसी मतलब से चक्रव्यूह बनाया गया, जिसमें अर्जुन का पुत्र महावीर अभिमन्यु—कौरव-पक्ष के सभी महारथियों को एक-एक करके हराकर, अंत में सबके द्वारा एक साथ घेर लिए जाने पर—अन्याय से मारा गया। पांडवों की ओर शोक का सन्नाटा छा गया, पर कौरवों के हर्ष का ठिकाना न रहा।

अभिमन्यु के मारे जाने के मुख्य कारण सिंधुदेश के राजा जयद्रथ थे, जो उस दिन चक्रव्यूह के द्वार की रक्षा कर

रहे थे। उनके मारे अभिमन्यु का कोई भी सहायक व्यूह के भीतर न घुस सका—वह बेचारा अकेला जाकर फँस गया और मारा गया। अर्जुन को बड़ा दुःख हुआ। वे क्रोध के मारे पागल हो गए। निदान अगले दिन के युद्ध में उन्होंने कौरव-सेना का बुरी तरह से संहार किया और जयद्रथ को मार ही तो डाला। दुर्योधन ने जयद्रथ को बचाने की बड़ी-बड़ी तरकीबें कीं, पर बचा न सके। सेना की दुर्दशा और जयद्रथ की मृत्यु से उन्हें बड़ा दुःख हुआ। वे कर्ण से कहने लगे—"देखो आचार्य ने जान-बूझकर अर्जुन को व्यूह के भीतर चला आने दिया, नहीं तो उनकी क्या मजाल थी कि जयद्रथ को हाथ भी लगा सकते या हमारी सेना का इस प्रकार बुरी तरह से संहार करते। अब तुम्हीं हमारे पक्ष की रक्षा करो तो हो सकती है, आचार्य से मुझे कुछ भी आशा नहीं।"

कर्ण ने दुर्योधन को धीरज बँधाया और कहा—"आचार्य रेयायत नहीं कर सकते, पर वृद्ध होने के कारण अर्जुन के सामने उनकी दाल नहीं गलती। उनके ऊपर संदेह नहीं करना चाहिए।" यह कहकर उन्होंने दुर्योधन को भारत का एकछत्र सम्राट् बना देने की प्रतिज्ञा की। दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुए।

पर कर्ण की ये बातें सुनकर कृपाचार्य को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने व्यर्थ की डींग हाँकने पर उन्हें बहुत फटकारा। कर्ण ने भी क्रोध में भरकर कृपाचार्य जी को तरह-तरह की खरी-खोटी सुनाई और कहा—"अगर आप वृद्ध न होते, तो इस तरह के कटु वचन कहने का अभी मज़ा मिल जाता।" अपने मामा का यह अपमान अश्वत्थामा से न देखा गया।

और वे तलवार लेकर कर्ण पर झपटे, पर दुर्योधन ने बीच में पड़कर बड़ी मुश्किल से सबका क्रोध शांत कर दिया। फिर युद्ध होने लगा। उस समय कर्ण ने ऐसा पराक्रम दिखाया कि पांडव-सेना के छक्के छूट गए। यह देख अर्जुन ने कृष्ण से कहा—"हमारा रथ कर्ण के सामने ले चलो, नहीं तो सारी सेना आज ही नष्ट हो जायगी।" पर कृष्ण जानते थे कि कर्ण के पास इंद्र की दी हुई अमोघ-शक्ति है, जिससे अर्जुन मारे जा सकते हैं। इसलिये उन्होंने अर्जुन की बात टालकर कहा—"यह काम घटोत्कच को सौंपे देता हूँ—तुम्हारी आवश्यकता नहीं।"

उधर घटोत्कच, जो हिडिंबा राक्षसी से उत्पन्न भीमसेन का पुत्र था, अपने (चचेरे) भाई अभिमन्यु की मृत्यु से कुपित होकर बड़ा ही भयंकर युद्ध कर रहा था। उसको कर्ण का मुकाबला करने की आज्ञा दी गई। उसने ऐसी विकट बाण-वर्षा शुरू की कि कौरवों की सेना में त्राहि-त्राहि मच गई। कोई भी वीर उसके सामने खड़ा न रह सका। तब महाबली कर्ण को बड़ा क्रोध आया और उन्होंने उसके सामने अपना रथ बढ़ाया। मगर घटोत्कच ने कर्ण को भी वह मार मारी कि उन्हें अपने जीवन का संशय होने लगा। वे व्याकुल हो गए। पर युद्ध से भागकर कायर कहलाना उन्हें स्वीकार न था और युद्ध-क्षेत्र में रहकर प्राण बचाना मुश्किल था। इसलिये उन्होंने इन्द्र की दी हुई अमोघ-शक्ति—जिसे उन्होंने अब तक अर्जुन के मारने के लिये रख छोड़ा था—घटोत्कच पर चलाकर उसे मार डाला।

अगले दिन के युद्ध में कर्ण का भीमसेन से कई बार

यज्ञका गूढ तत्त्व ।

निघण्टु (३ । १७) में यज्ञवाचक १५ नाम दिये हैं, इनके अर्थ और उनके आशय प्रथम देखिये—

(१) यज्ञ ।

सबसे प्रथम " यज्ञ " शब्द हमारे सन्मुख आता है। इसका अर्थ सुप्रसिद्ध है— " देव पूजा, संगतिकरण और दान " ये इसके मूल अर्थ हैं। देवोंका सत्कार, संगति करण अर्थात् संघटन और परोपकार अर्थात् दूसरोंकी सहायता करने के लिये आत्मसमर्पण करना ये तीन भाव इसमें मुख्य हैं।

विचार करनेसे पता लगजायगा कि ये तीन भाव ही मानवी उन्नतिके महामंत्र हैं। (१) सत्कार करने योग्य जो हैं उनका सत्कार करना, (२) आपसमें संगठनका बल बढाकर अपनी संघशक्ति का उत्कर्ष करना, और (३) जो दीन दुर्बल हैं, उनकी उन्नति के लिये आत्मसमर्पण करना ये तीन भाव ऐसे हैं, कि जिनके पालन करनेसे हरएक समाज तथा संघ निश्चय से उन्नत हो सकता है।

देवपूजा करनेका प्रश्न जहां उत्पन्न होता है; वहां देव कौन हैं, देवोंका स्वरूप क्या है, इस प्रश्नका विचार अवश्य करना पडता है। यज्ञके अर्थमें भी जो 'देवपूजा' है, वह किनकी पूजा है, इसका यहां विचार अवश्य करना चाहिये।

देव शब्द भाषामें किंवा संस्कृत भाषामें भी प्रसिद्ध है। ब्राह्मणोंको " भूदेव " कहते ही हैं। क्षत्रियों को " देव " शब्दका प्रयोग नाटकादिकों में भी हुआ है। वैश्य धनदेव सुप्रसिद्ध हैं और कर्मदेव शूद्र ही हैं। ये देवोंके चार भेद आजकलके नहीं हैं अनादिसिद्ध हैं—

ब्राह्मण — भूदेव, ज्ञानदेव।
क्षत्रिय — राष्ट्रदेव, शौर्यदेव।
वैश्य — धनदेव।
शूद्र — कर्म देव।

इसलिये अगले दिन अश्वत्थामा के प्रस्ताव करने पर उन्होंने कर्ण ही को सेनापति बनाने का निश्चय किया। वे कर्ण से बोले—"हे वीर, तुम्हारे बल-वीर्य को हम अच्छी तरह जानते हैं। हमें यह भी मालूम है कि हमारे ऊपर तुम्हारी कितनी प्रीति है। भीष्म और द्रोण के न रहने से इस समय सेनापति का आसन ग्रहण करने के लिये तुमसे बढ़कर कोई योद्धा नहीं, तुम उन दोनों से अच्छे सेनापति होगे। क्योंकि वे पांडवों के और खास कर अर्जुन के साथ रियायत करते थे। तुम्हारे सेनापति रहते हुए विश्वास है कि अवश्य हमारी जीत होगी।"

कर्ण बोले—"हमने पहले ही कह रखा है कि हम पांडवों को बंधु-बांधवों-सहित परास्त करेंगे। इसलिये हमें सेनापति बनाकर अब तुम अपने शत्रुओं को मरा हुआ ही समझो।"

यह सुनकर दुर्योधन ने कर्ण को सेनापति बनाने की तैयारी की। उन्होंने सुवर्ण और मिट्टी के कलश, हाथी, गैंड़े और बैल के सींग, अनेक प्रकार के सुगंधित द्रव्य तथा अन्यान्य आवश्यक वस्तुएँ इकट्ठी कीं और बहुमूल्य रेशमी वस्त्र पहने तथा एक ऊँचे आसन पर बैठे हुए महावीर कर्ण को शास्त्र की रीति से सेनापति बना दिया।

दूसरे दिन बड़े तड़के ही सेनापति कर्ण ने सब योद्धाओं को तैयार होने की आज्ञा दी और बड़े जोर से शंख बजाकर उनका उत्साह बढ़ाया। वे लोग शीघ्र ही तैयार हो गए। तब वीरवर कर्ण ने श्वेत घोड़ों से युक्त एक बहुत ही उत्तम और दृढ़ रथ पर बैठकर तथा अनेक अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर सेना के आगे रण-भूमि के लिये

सेनापति कर्ण

प्रयाण किया। वहाँ पहुँचकर उन्होंने मकर-व्यूह की रचना की, जिसके मुँह की जगह वे स्वयं, दोनों आँखों की जगह शकुनि और उलूक तथा मस्तक की जगह अश्वत्थामा हुए। कमर की जगह बड़े-बड़े वीरों से घिरे दुर्योधन जा डटे और गर्दन की जगह धृतराष्ट्र के अन्यान्य पुत्र खड़े हुए। रहे चारों पैर, सो एक की जगह नारायणी-सेना लेकर कृतवर्मा जम गए। दूसरे की जगह दाक्षिणात्य सेना के साथ कृपाचार्य हुए। तीसरे और चौथे की जगह महावीर त्रिगतराज तथा मद्रराज शल्य अपनी-अपनी सेनाएँ लेकर खड़े हो गए। जवाब में अर्जुन ने अर्द्ध-चंद्र-व्यूह बनाया। पर उस दिन के युद्ध में कर्ण ने ऐसी वीरता दिखाई कि कोई भी उनके सामने न ठहर सका। उनके विषम बाणों की मार से व्याकुल होकर हाथियों के समूह-के-समूह भीषण चिग्घाड़ करते हुए चारों तरफ दौड़े-दौड़े फिरने लगे। पैदल सिपाहियों की दुर्दशा का कहना ही क्या! उनके दल-के-दल गाजर-मूली की तरह कट-कटकर पृथ्वी पर गिरने लगे।

अपनी सेना की ऐसी दुर्गति वीर नकुल से न देखी गई। उन्होंने बड़े क्रोध में आकर कर्ण पर आक्रमण किया और थोड़ी ही देर में उनके सारथी को मार डाला। इसपर कर्ण का क्रोध और भी बढ़ गया। वे पहले से भी अधिक भयंकर युद्ध करने लगे। उन्होंने सैकड़ों बाणों से नकुल को तोपकर उनके सारथी को और फिर चारों घोड़ों को मार गिराया।

कर्ण-नकुल-युद्ध

नकुल ने कर्ण को मारने के लिये गदा उठाई, पर कर्ण ने उसे भी शीघ्र ही काट दिया और नकुल के रथ की पताका को

काटकर, रथ-चक्र के रक्षकों को मार डाला। नकुल ने ढाल, तलवार, शूल, क्षुरप्र, तोमर आदि जो-जो अस्त्र-शस्त्र उठाए—वे सब वीर कर्ण ने एक-एक करके काट दिये। कोई हथियार न रहने और रथ के चकनाचूर हो जाने पर नकुल रथ का पहिया ही उठाकर बड़े वेग से कर्ण के ऊपर झपटे। कर्ण ने तीक्ष्ण बाणों की मार से उस पहिये की भी धज्जियाँ उड़ा दीं और अनेक बाण नकुल के शरीर में मारकर उनको बहुत पीड़ा पहुँचाई। पर उन्होंने प्राण लेने की चेष्टा न की, नहीं तो इस समय नकुल का बचना असंभव था।

निदान अस्त्र-शस्त्र-रहित और पीड़ा से व्यथित होने के कारण नकुल ने भागने की ठानी। पर कर्ण ने दौड़कर धनुष उनके कंठ में डाल दिया और अपनी ओर खींचकर उनसे कहने लगे—"हे माद्रीनंदन! विपक्षी के बल का अनुमान करके लड़ने का हौसला किया करो। याद रखो, प्रतापी कौरवों के शत्रुओं की यही दशा होगी। इस समय मैं तुम्हें छोड़े देता हूँ। जाओ, घर लौट जाओ अथवा अर्जुन के पास पहुँचकर अपनी रक्षा करो।" नकुल लज्जा और क्रोध में भरे हुए वहाँ से चले गए। इसके बाद कर्ण और भी ज़ोरों से पांडव-सेना का संहार करने लगे। चारों ओर उन्हीं के चलाए हुए बाण दिखाई देते थे। पांडव-सेना की हिम्मत टूट गई—उसके पैर उखड़ गए।

इस समय अर्जुन युद्ध-स्थल से दूर संसप्तकों के साथ संग्राम कर रहे थे। उन्हें यहाँ का हाल बहुत देर में मालूम हुआ। फिर तो उन्होंने बड़ी शीघ्रता के साथ संसप्तकों का युद्ध समाप्त किया और कर्ण के सामने आकर घोर युद्ध करने लगे। कर्ण

का ध्यान अर्जुन की ओर बँटते ही पांडव-सेना का संहार बंद हुआ और उन लोगों की जान में जान आ गई। पर इतने ही में संध्या हो गई। इसलिये युद्ध बंद कर दिया गया। दोनों ओर के योद्धा अपने-अपने शिविर में विश्राम करने के लिये चले गए।

दसवाँ परिच्छेद

दूसरे दिन प्रातःकाल ही कर्ण दुर्योधन के पास गये और कहा—"आज मैं अंतिम युद्ध करूँगा। अब तक औरों के साथ युद्ध करते रहने से मुझे अर्जुन के साथ जी-

कर्णार्जुन-युद्ध

भर कर लड़ने का मौक़ा न मिल सका; पर आज मैं दिल के हौसले निकालना चाहता हूँ। आज या तो मैं उन्हें मार डालूँगा या स्वयं उनके हाथ से मारा जाऊँगा। पर इस समय मैं आपके सामने अपनी और अर्जुन की शक्ति का मुकाबला करना चाहता हूँ। अस्त्र-शस्त्र चलाने में अर्जुन का और मेरा पराक्रम बराबर है। उनके गांडीव [ध]नुष के समान मेरे पास भी परशुराम का दिया हुआ वह [धनु]ष है, जिससे उन्होंने इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार किया [था]। पर हाँ, दो-एक बातों में वे मुझसे बढ़कर हैं। एक [तो] उनके धनुष की प्रत्यंचा दिव्य है, और उनके पास दो अक्षय तूणीर हैं। दूसरे उनका रथ भी दिव्य है, रथ के घोड़े भी बड़े तेज़ हैं और सारथी स्वयं कृष्ण हैं। इतना अंतर होते हुए भी अगर मुझे रथ हाँकने के लिये मद्रराज शल्य मिल जायँ, तो मैं अर्जुन से जी खोलकर लड़ सकूँ और मारकर दिखा दूँ।"

यह सुनते ही दुर्योधन शल्य के शिविर में गए और उनकी बहुत स्तुति-प्रशंसा करके कर्ण का सारथी बनने की प्रार्थना की। पहले तो शल्य ने इसमें अपना अपमान समझकर

दुर्योधन को बहुत डाटा। पर जब उन्हें युधिष्ठिर की प्रार्थना-
शल्य को सारथी याद आई, तो वे राजी हो गए; लेकिन
बनाना उन्होंने शर्त यह रखी कि वे जो चाहें सो
कर्ण से कहें, पर कर्ण उन्हें न रोकें।

कर्ण और दुर्योधन ने शर्त मान ली। तब शल्य ने कर्ण का जय-जयकार किया और उनका रथ तैयार करके उनके पास ले आए। महावीर कर्ण ने उस रथ की पूजा और प्रदक्षिणा की। इसके बाद सूर्य की उपासना तथा ब्राह्मणों को अपरिमित दान करके उन्होंने मद्रराज शल्य को उसपर सवार होने की आज्ञा दी और फिर स्वयं भी जा विराजे। दुर्योधन ने कर्ण की मंगल-कामना की और कहा—"जो काम भीष्म-द्रोण-सरीखे महारथी नहीं कर सके, आज तुम कर दिखाओ।"

कर्ण ने बड़े हर्ष और उत्साह के साथ शंख-ध्वनि की और शल्य से कहा—"मेरा रथ फौरन चलाओ। मैं बहुत जल्द पांडवों को परास्त करना चाहता हूँ। आज अर्जुन को मालूम पड़ जायगा कि मेरी भुजाओं में कितना बल है। आज दुर्योधन को जिताने के लिये मैं ऐसी बाण-वर्षा करूँगा कि पांडवों को छठी तक की याद आ जायगी।"

यह सुनकर शल्य कहने लगे—"हे सारथी-पुत्र, स्वयं इन्द्र भी जिनके डर से काँपने लगते हैं, उन महाधनुर्धारी पांडवों को तुम तुच्छ मत समझो। जैसे गीदड़ सिंह की बराबरी नहीं कर सकता, उसी तरह तुम भी पांडवों से लड़ने के योग्य नहीं। जिस समय गांडीव की महाभीषण टंकार सुनोगे और उससे छूटे हुए बाण तुम्हारे अंग-प्रत्यंग को छेदेंगे, जिस समय महाबली

वायुपुत्र भीम की भयंकर गदा की चोट से घोड़े-सारथी-सहित तुम्हारा रथ चकनाचूर होकर धूल फाँकने लगेगा, जिस समय धर्मराज युधिष्ठिर तथा वीर नकुल और सहदेव तुम्हारे ऊपर आ टूटेंगे, उस समय तुम्हारे मुँह से ऐसी बातें न निकलेंगी।"

शल्य की बातों को अनसुनी करके कर्ण ने उनसे फिर रथ चलाने को कहा। शल्य ने घोड़े हाँके, और जैसे अंधकार का नाश करके सूर्य निकलता है, उसी तरह उनके द्वारा चलाया गया वह रथ शत्रुओं का संहार करता हुआ दौड़ने लगा। कर्ण बहुत प्रसन्न हुए और पांडव-सेना के वीरों को जोर से पुकार-कर कहने लगे—"तुममें से जो कोई इस समय हमें दिखा देगा कि अर्जुन कहाँ है, उसे हम मुँह-माँगा धन-धान्य, मणि-मुक्ता, दास-दासी, ग्राम, गौएँ आदि इनाम में देंगे।" यह कहकर उन्होंने बड़े जोर से शंख-ध्वनि की। शल्य ने फिर कर्ण का ठट्ठा किया। वे बोले—"हे कर्ण, तुम व्यर्थ ही अपनी धन-सम्पत्ति इस तरह दे डालने का विचार न करो; क्योंकि तुम्हारा घमंड चूर करने-वाले वीर अर्जुन स्वयं ही तुम्हारे सामने आएँगे। हमें तुम्हारी बुद्धि पर बड़ा तरस आता है। तुम्हारी दशा बिलकुल वैसी ही हो रही है, जैसी बुझने के पहले दीपक की होती है।"

कर्ण ने कहा—"हे शल्य, हमें अपने भुजबल का पूरा भरोसा है। तुम ऐसी बातें कहकर हमें नहीं डरा सकते।" इस पर शल्य कर्ण को और भी तीखी-तीखी बातें सुनाने लगे। लेकिन कर्ण उन्हें न रोकने की शर्त पर राजी हो चुके थे। इस-लिये उन्होंने और कुछ तो किया नहीं, शल्य की निंदा करने लगे। यह विवाद यहाँ तक बढ़ा कि कर्ण युद्ध की ओर से

बिल्कुल अनमने हो गए। शल्य को अपना उद्देश्य पूरा होते देख बड़ी प्रसन्नता हुई; पर ऊपर से उन्होंने अपनी तू-तड़ाक जारी रखी।

यह अनर्थ होते देख दुर्योधन को बहुत चिंता हुई और उन्होंने हाथ-पैर जोड़कर दोनों को शांत किया। कर्ण फिर युद्ध में प्रवृत्त हुए और क्रोध में भरकर साक्षात् यमराज की तरह पांडव-सेना का संहार करने लगे। आज उनके पुत्र सुसेन और सत्यसेन उनके रथ के चक्र-रक्षक तथा बड़े पुत्र वृषसेन पृष्ठ-रक्षक का काम कर रहे थे।

सबसे पहले कर्ण का सामना भीम से हुआ। भीम ने अपना नाम सार्थक करते हुए कर्ण को ऐसी बुरी तरह घायल किया कि वे अचेत होकर रथ में गिर पड़े। यह देख शल्य रथ को युद्ध-क्षेत्र से भगा ले गए। थोड़ी देर बाद मूर्छा से जागने पर वे युद्ध-भूमि में लौट आए और आते ही युधिष्ठिर से जुट गए। उनके बड़े पैने बाणों की मार से युधिष्ठिर व्याकुल हो गए—उनके शरीर में अनेक घाव लग गए और अस्त्र-शस्त्र भी सब कट गए। निदान प्राण बचाने के लिये उन्हें वहाँ से भाग जाना पड़ा।

इस समय अर्जुन दूर पर संसप्तकों के साथ युद्ध कर रहे थे। वहाँ से निपटकर जब वे लौटे, तो युद्ध-भूमि में युधिष्ठिर को न देखकर बहुत चिंतित हुए। भीमसेन से पूछने पर मालूम हुआ कि कर्ण के हाथों घायल होकर वे चिकित्सा कराने शिविर में चले गए हैं। निदान श्रीकृष्ण के साथ अर्जुन उन्हें देखने शिविर में गए। इन लोगों को आते देख युधिष्ठिर ने समझा कि

अर्जुन कर्ण को मार आए। पर जब उन्हें मालूम हुआ कि कर्ण अभी नहीं मारे गए, तो उन्होंने क्रोध में आकर अर्जुन को बहुत फटकारा और उनकी तथा उनके गांडीव की बड़ी निंदा की। बिना अपराध फटकारे जाने से अर्जुन को बेहद क्रोध हो आया। उन्होंने युधिष्ठिर के मारने को तलवार निकाल ली। पर कृष्ण ने बीच में पड़कर दोनों का क्रोध शांत कर दिया। अंत में युधिष्ठिर से क्षमा माँगकर और कर्ण-वध की प्रतिज्ञा करके वीर अर्जुन कृष्ण के साथ युद्ध-भूमि को लौट गए। वहाँ पहुँचते ही कर्ण के साथ उनका युद्ध ठन गया। कर्ण के देखते-देखते उनके पुत्र भानुसेन और सत्यसेन को भीम ने, सुसेन और वृषसेन को अर्जुन ने तथा प्रसेन को सात्यकि ने मार गिराया। पुत्रों के मारे जाने से वीर कर्ण क्रोध से उन्मत्त हो उठे और अद्भुत पराक्रम दिखाते हुए अर्जुन के साथ युद्ध करने लगे। यह युद्ध देखने के लिये देवता, गंधर्व, यक्ष, किन्नर आदि विमानों में बैठ-बैठकर आकाश में आकर डट गए। उनमें से कोई कर्ण की जीत मनाने लगा, कोई अर्जुन की। सूर्य और इंद्र अपने-अपने पुत्र की विजय-कामना करते हुए युद्ध देखने में तल्लीन हुए। दोनों पक्षों के योद्धा भी आपस का लड़ना छोड़ दर्शकों की भाँति खड़े होकर उन दो महाबली धनुर्धारियों का युद्ध देखने लगे। ऐसा विकट युद्ध पहले कभी नहीं हुआ था।

महाबली धनंजय ने दुर्वाक्य कहकर कर्ण के ऊपर बाण बरसाना आरंभ किया, पर कर्ण ने सहज ही में उन बाणों को काट दिया और अर्जुन की बहुत निंदा की। कुछ देर तक यों ही साधारण अस्त्र-शस्त्रों से युद्ध होता रहा; पर न कर्ण अर्जुन को

चोट पहुँचा सके, न अर्जुन कर्ण को। तब तो अत्यंत क्रोध करके अर्जुन ने कर्ण के ऊपर आग्नेयास्त्र छोड़ा। कर्ण ने उसे वरुणास्त्र से शांत कर दिया। यह देखकर अर्जुन ने वायव्यास्त्र का प्रयोग किया, जिसे कर्ण ने सहज ही में विफल कर दिया। जब अर्जुन ने अपने दिव्यास्त्रों के प्रहार को भी व्यर्थ जाते देखा, तो उन्होंने इंद्र का दिया हुआ वज्रास्त्र कर्ण के ऊपर फेंका। कर्ण ने भार्गवास्त्र से उसे भी काट दिया। थोड़ी देर बाद अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र चलाया, पर महाप्रतापी कर्ण उसकी चोट भी बचा गए।

इतने में क्या हुआ कि बहुत खींची जाने के कारण अर्जुन के गांडीव धनुष की प्रत्यंचा तड़ाक से टूट गई। कर्ण को अच्छा मौक़ा मिला। जब तक अर्जुन दूसरी प्रत्यंचा चढ़ाएँ, तब तक कर्ण ने उन्हें और कृष्ण को बाणों से ऐसा छेद दिया कि उन दोनों के शरीर लोहू-लुहान हो गये। उस समय कर्ण का पराक्रम देखकर यही मालूम होता था कि आज अर्जुन न बचेंगे। खैर, अर्जुन ने किसी प्रकार दूसरी प्रत्यंचा चढ़ा ली और कर्ण के बाणों का जवाब देने लगे। पर कर्ण ने वह प्रत्यंचा भी काट दी। इस प्रकार एक-एक करके ग्यारह बार अर्जुन के धनुष की प्रत्यंचा काटी गई और उन्हें खूब ही घायल किया गया। थोड़ी देर बाद अर्जुन प्रबल हुए और उन्होंने कर्ण तथा शल्य को बुरी तरह से घायल कर दिया। इसके बाद यह हाल रहा कि कभी अर्जुन प्रबल हो जाते, कभी कर्ण। आकाश से कभी आवाज आती—'शाबाश कर्ण!', कभी आती—'शाबाश अर्जुन!'।

इस प्रकार जब बहुत देर तक युद्ध होता रहा और कर्ण के शरीर में अनेक घाव हो गए, तो उन्हें नागास्त्र की याद आई, जिसे उन्होंने बहुत दिनों से अर्जुन को मारने के लिये रख छोड़ा था और जिसकी वे नित्यप्रति पूजा किया करते थे। कृष्ण ने जब देखा कि कर्ण नागास्त्र छोड़ना चाहते हैं, तो यह सोचकर कि अर्जुन की खैर नहीं, उन्होंने एक बड़े ही अद्भुत कौशल से काम लिया। जैसे ही कर्ण के हाथ से वह अस्त्र छूटा, वैसे ही उन्होंने लगाम के इशारे से उधर तो रथ के घोड़ों को बैठा दिया और इधर पैरों का जोर देकर रथ को दबा दिया। फल यह हुआ कि अर्जुन का सिर कुछ नीचा हो गया और वह अस्त्र जो उनका सिर ताककर चलाया गया था, केवल किरीट काटकर कर्ण के पास लौट गया। अर्जुन के प्राण बच गए। यह देख शल्य ने कर्ण से कहा—"हे कर्ण, तुमने ठीक निशाना नहीं लगाया था, इसीसे शत्रु न मर सका। इस बार अच्छी तरह निशाना साधकर फिर उसी बाण को चलाओ।" कर्ण बोले—"इस तरह के सौ अर्जुनों से भले ही मुकाबला पड़ जाय, पर कर्ण एक बार छोड़ा हुआ अस्त्र दूसरी बार नहीं छोड़ता।"

उसी समय अश्वसेन नाग ने कर्ण के पास आकर कहा—"अगर तुम मेरी सहायता लो, तो तुम्हारा शत्रु अभी मारा जा सकता है।" कर्ण ने कहा—"मैंने अर्जुन से जो शत्रुता की है, वह अपने बाहुबल पर, किसी दूसरे के भरोसे पर नहीं। इस-लिये आप कृपा कीजिए—मुझे आपकी सहायता की आव-श्यकता नहीं।"

इतनी देर में अर्जुन ने कर्ण को कुछ शिथिल देखकर उनके
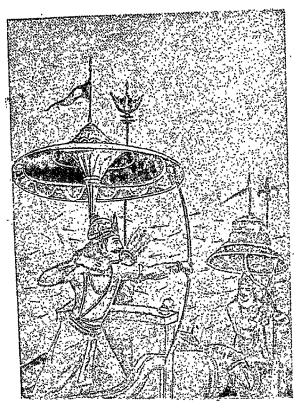
गांडीव से छूटे हुए अनेक बाण कर्ण के कवच फोड़कर शरीर में घुस गए

ऊपर बड़ी विकट बाण-वर्षा आरंभ कर दी। गांडीव से छूटे हुए अनेक बाण कर्ण के कवच फोड़कर शरीर में घुस गए। उनके किरीट और कुंडल भी कट गए और शरीर से लोहू की धार बहने लगी। उनके हाथ-पैर ढीले पड़ गए। जब अर्जुन ने कर्ण की यह दशा देखी, तो उनपर चोट करना उचित न समझकर अपना हाथ रोक लिया। यह देख कृष्ण ने कहा—"यह क्या मूर्खता कर रहे हो?" इतने में ही कर्ण सावधान हो गए। अर्जुन फिर बाण-वर्षा करने लगे। पर कर्ण का अंत समय निकट आ गया था। पीड़ा के मारे वे परशुराम के शाप से उनके सिखाए हुए सब अस्त्र-शस्त्र चलाना भूल गए। उनका शरीर लोहू-लुहान हो गया और वे बिलकुल निराश होकर धर्म की निंदा करने लगे—कहने लगे—"मैंने जन्म-भर धर्माचरण किया है। फिर क्या कारण है कि धर्म इस समय मुझे छोड़ रहा है?" यह कहकर वे बहुत उदास हो गए और बड़ी बेपरवाही से युद्ध करने लगे। यह देख कृष्ण ने अर्जुन से कहा—"शत्रु को मारने का यह बड़ा अच्छा मौक़ा है।" सुनते ही अर्जुन ने बड़े पैने-पैने बाण बरसाने शुरू किए। यह देख कर्ण को फिर क्रोध हो आया—उनका उत्साह फिर बढ़ा और वे ब्रह्मास्त्र छोड़ने लगे।

इसी समय उस ब्राह्मण के शाप से कर्ण के रथ का पहिया कीचड़ में धँस गया। रथ टस-से-मस न हो सका। अब तो कर्ण बहुत घबराए और उन्होंने शल्य से प्रार्थना की कि उतर-कर पहिया कीचड़ में से निकाल दें। पर शल्य को क्या पड़ी थी जो पहिया निकालते? वे तो हृदय से अर्जुन की जीत चाहते थे। इसलिये उन्होंने जवाब दिया कि पहिया निकालना सारथी

का काम नहीं होता, और कर्ण को अनेक बुरी-भली सुनाने लगे। इस दैवी आपत्ति के कारण कर्ण को अपने अरमान निकलते न दिखाई पड़े—ऐसी बेबसी पर उनकी आँखों में आँसू भर आए। उन्होंने क्षत्रिय-धर्म की दुहाई देकर अर्जुन से कहा कि जब तक वे उतरकर रथ का पहिया कीचड़ में से न निकाल लें, तब तक युद्ध बंद रहे। अर्जुन तो चुप रहे; लेकिन कृष्ण ने उत्तर दिया—"हे सूतपुत्र, हमारे अहोभाग्य, जो इस समय तुम्हें धर्म की याद आई। पर जब तुम्हारी सलाह से जुआ-घर में द्रौपदी का अपमान किया गया था, जब सात महारथियों ने मिलकर बेचारे अभिमन्यु को मारा था, उस समय तुम्हारा यह धर्म कहाँ था? अतएव हम लोगों से इस समय तुम्हें कोई आशा न करनी चाहिए।"

कृष्ण के ये वचन सुनकर कर्ण ने मुँह नीचा कर लिया और कीचड़ में फँसे हुए रथ पर बैठे-बैठे ही उन्होंने अर्जुन के ऊपर ऐसी बाण-वर्षा की कि अर्जुन को [illegible] गई। कर्ण तुरंत रथ से कूद पड़े और कीचड़ में धँसा [illegible] या निकालने की कोशिश करने लगे। पर पहिया न [illegible], तो नहीं ही निकला। उन्होंने शल्य से फिर सहा[illegible] प्रार्थना की, पर शल्य ने मानों सुनी ही नहीं।

कर्ण की मृत्यु

इतने ही में अर्जुन को चेत हो [illegible]। यह देख कृष्ण ने कहा—"अब क्या देख[illegible] रथ पर चढ़ने के पहले ही कर्ण [illegible] काट लो।" निदान अर्जुन ने [illegible] एक बाण तरकस से निकालकर गांडीव पर [illegible] कान तक खींच-कर उसे कर्ण के ऊपर छोड़ दिया। क[illegible] मुँह फैलाए

हुए उस महाभीषण अस्त्र ने उल्का के समान आकाश में प्रकाश करके कर्ण के सिर को काट दिया। उनका पूरा शरीर धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ा और कटी हुई गर्दन से खून का फव्वारा छूटने लगा।

उनका कटा हुआ सिर अस्त होते हुए सूर्य-बिंब की तरह जान पड़ता था। शरीर-भर में बाण बिंधे हुए थे। कवच टुकड़े-टुकड़े हो गया था और घावों से इतना लोहू निकला था कि वे उसमें नहाए हुए मालूम पड़ते थे। पर उस दशा में भी उनकी शोभा कम न हुई थी—चेहरे पर वैसा ही तेज बना था। देखने से यह नहीं जान पड़ता था कि वह सिर—वह चेहरा निर्जीव है। जैसे सिंह को देखकर हिरन डरते हैं, उसी तरह मरे हुए कर्ण को देखकर भी योद्धा लोग भय खाते थे—उनका ऐसा आतंक छा गया था।

पांडवों के हर्ष का क्या कहना! उनकी सेना में शंख ध्वनि होने लगी—विजय के नगाड़े बजने लगे और वे लोग कूद-कूद-कर तथा एक-दूसरे से गले मिल-मिलकर अपनी प्रसन्नता प्रकट करने लगे। कर्ण के जीवित रहते उन्हें जीत की आशा न थी—पर अब उन्हें ऐसा मालूम पड़ने लगा, मानों युद्ध समाप्त हो गया हो और वे जीत गए हों। अर्जुन ने जितनी तपस्या की थी, वह आज सफल हुई। फिर भी कृष्ण की सहायता के बिना वे कर्ण से नहीं जीत सकते थे। इसीलिये वे बार-बार कृष्ण को गले लगा-कर उन्हें धन्यवाद देने लगे। धर्मराज ने भी बड़े प्रेम और गर्व से अर्जुन को छाती से लगा लिया और उनकी तथा कृष्ण की प्रशंसा के पुल बाँध दिए।

पर कर्ण के मरते ही कौरवों की सेना में हाहाकार मच गया। उनके ऊपर न केवल दुर्योधन को, बल्कि सेना-भर को इतना भरोसा था—उनसे इतनी आशाएँ थीं कि उनके गिरते ही सबकी हिम्मत टूट गई। मद्रराज शल्य भी टूटी ध्वजा-वाला रथ लेकर दुर्योधन के पास पहुँचे और आँखों में आँसू भरकर रुँधे हुए कंठ से कहने लगे—"महाबली कर्ण वीरगति को प्राप्त हो गए। अर्जुन के साथ उनका जैसा घोर युद्ध हुआ, वैसा न पहले कभी हुआ था और न भविष्य में ही होने की आशा है। उन्होंने पहले तो कृष्ण और अर्जुन को खूब ही घायल कर दिया—पर क्या करते, दैव प्रतिकूल था। इसी से उनके समान धनुर्धारी भी अर्जुन के हाथों मारा गया। यह सब भाग्य का दोष है। इसलिये अब शोक करने से कोई लाभ नहीं, हिम्मत बाँधिए। सबकी हमेशा जीत ही नहीं होती।"

कर्ण की मृत्यु की खबर सुनते ही दुर्योधन कटे वृक्ष की तरह पृथ्वी पर गिर पड़े और बड़ी देर तक अचेत रहे। होश में आने पर वे कर्ण का नाम ले-लेकर घोर विलाप करने लगे। उन्हें ऐसा मालूम पड़ने लगा, मानों वे अनाथ हो गए हों। उनकी आशा के एकमात्र आधार कर्ण ही थे। कर्ण ही के भरोसे वे विजय पाने की कामना करते थे। कर्ण की मृत्यु क्या हुई, उनकी सब आशाओं पर पानी फिर गया। उन्हें चारों ओर अंधकार ही अंधकार दिखाई पड़ने लगा। वे जीवन से बिल्कुल निराश हो गए और मुर्दे की तरह गिर पड़े। उस समय अगर उनकी कोई इच्छा थी, तो यही कि किसी तरह उनके भी प्राण निकल जायँ और वे अपने मित्र के पास स्वर्ग में जा पहुँचें।

ऐसे में पांडवों की खूब बन आई। भीमसेन और अर्जुन ने शत्रुओं की जब ऐसी दुर्दशा देखी, तो बड़े जोर से सिंहनाद करके वे कौरव-सेना में बढ़-बढ़कर हाथ मारने लगे। उन लोगों ने इस बुरी तरह से कौरवों का संहार शुरू किया कि बिल्कुल प्रलय-सी मालूम पड़ने लगी। कौरवों के पक्ष के अगणित योद्धा गाजर-मूली की तरह कट-कटकर गिरने लगे। थोड़ी देर में उनके पैर उखड़ गए और वे लोग घबराकर पागलों की तरह इधर-उधर भागने लगे। उस समय किसी को यह नहीं सूझता था कि वह किधर को जा रहा है। हर एक को भीम और अर्जुन साक्षात् यमराज की तरह मालूम पड़ते थे। वे लोग एक-दूसरे को रौंदते हुए इस तरह भाग रहे थे, मानों उनके पीछे कोई भूत लगा हो। उस समय हर एक यही सोचता था कि भीम और अर्जुन उसी की ओर आ रहे हैं। बहुत-से तो डर और घबराहट से ही गिर कर मर गए। रथी, गजारोही, घुड़-सवार आदि सभी अपने-अपने प्राण बचाने की फिक्र में थे। चारों ओर भयभीत हाथी-घोड़े चिंघाड़ते और हिनहिनाते हुए बेतहाशा भागते दिखाई पड़ते थे।

सेना की ऐसी दुर्दशा देखकर दुर्योधन अपना दुःख भूल गए और क्रोध में भरकर युद्ध करने को चल दिए। उन्होंने योद्धाओं को ललकारकर कहा—"खबरदार, यदि कोई भागा, तो मेरे हाथ जीता न बचेगा। वीर कर्ण की मृत्यु का बदला लेने का यही समय है। इस समय अर्जुन बहुत थके हुए हैं। अगर हम सब लोग मिलकर उनपर हमला करें, तो निश्चय ही उन्हें मार सकेंगे और नहीं तो युद्ध-भूमि में मरकर सीधे स्वर्ग

पहुँचेंगे। क्षत्रिय-धर्म यही है। इसलिये हे वीरो, अपनी माताओं के दूध को मत लजाओ। आज दुष्ट पांडवों को दिखा दो कि तुम कायर नहीं हो—तुम्हारे हाथों में उन्हें दंड देने की शक्ति है।"

यह कहकर उन्होंने पांडवों के बीच में अपना रथ बढ़ाने की आज्ञा दी और बिना इसका ख्याल किए कि कोई उनके साथ भी आ रहा है या नहीं; बाणों की वर्षा करते हुए पांडव-सेना में घुस पड़े। उनके पक्ष के थोड़े-से योद्धा भी—कुछ तो शर्म के मारे और कुछ उनके डर से—भागते हुए रुक गए और उनके रथ को चारों ओर से घेरकर पांडव-सेना पर वार करने लगे। पर उन लोगों के हाथ-पैर न चलते थे। सबके दिल धड़क रहे थे। ऐसा मालूम पड़ता था कि किसी के भी प्राण न बचेंगे। उधर भीम, अर्जुन और धृष्टद्युम्न एक-एक को गिन-गिनकर मार रहे थे। अँधेरा भी हो चला था। अतएव शल्य ने दुर्योधन को युद्ध बंद करने की सलाह दी। दुर्योधन ने भी यह देखकर कि उनके योद्धा लड़ने में बिल्कुल असमर्थ हो गए हैं—उस दिन का युद्ध बंद किया और 'हाय कर्ण! हाय कर्ण!' कहते हुए डेरों की ओर प्रस्थान किया।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

रात्रि के समय जब संजय ने जाकर धृतराष्ट्र से कर्ण की मृत्यु का हाल कहा, तो धृतराष्ट्र एकदम पछाड़ खाकर गिर पड़े।

कौरवों का शोक

चेत आने पर वे अपने भाग्य की और अपने दुर्मति पुत्रों की घोर निंदा करने लगे—जिनके कारण एक-से-एक बढ़ कर हित-मित्र और सगे-सम्बन्धी मृत्यु को प्राप्त हुए थे। वे बड़ी गहरी साँस लेकर और अपनी ज्योतिहीन आँखों से आँसू बहाते हुए संजय से कहने लगे—"मुझे बाल-ब्रह्मचारी और धनुर्धारियों में श्रेष्ठ भीष्म तथा अद्वितीय वीर द्रोणाचार्य के भी मारे जाने से उतना दुःख और आश्चर्य नहीं हुआ था, जितना आज कर्ण के मारे जाने से हो रहा है। आज मुझे मालूम पड़ता है कि अब कहीं ठिकाना नहीं—मेरा पुत्र दुर्योधन और कर्ण एक प्राण दो शरीर थे। दुर्योधन को जितनी आशा कर्ण से थी, उतनी भीष्म और द्रोण से भी न थी। हाय! अब दुर्योधन कैसे धीरज धरेगा! न जाने उसकी क्या दशा होगी! आह! वीर कर्ण! जिन भुजाओं ने बिना किसी की सहायता के संसार-भर को जीत लिया था, वे ही आज निर्जीव होकर पृथ्वी पर पड़ी हैं। संसार-भर में जिसकी बराबरी का कोई वीर न था, जिसने परम पराक्रमी जरासंध को हरा दिया था, जिसने अकेले ही काशी-नरेश के यहाँ स्वयंवर में सब राजाओं के दाँत खट्टे कर दिए थे, स्वयं अर्जुन जिसके भय के मारे चिंता में घुलता रहता

था और तरह-तरह की तपस्या करके दिव्य अस्त्र-शस्त्र पाने की चेष्टा करता रहता था, वही महाबली अद्भुत पराक्रमी वीर कर्ण, हाय कैसे मारा गया ? यह शोक मेरे मर्मस्थल को काटे डालता है । हाय ! सज्जन लोग कर्ण को महात्मा और सत्पुरुष कहते थे । उसका सम्मान करते थे । उसने अपनी सारी संपत्ति ब्राह्मणों को दे डाली थी । उसके समान दानी आज तक दूसरा नहीं हुआ । इन्द्र को अपने सहजात कवच और कुंडल उसने हर्षपूर्वक शरीर से काटकर दे दिए थे । हाय ! आज मालूम पड़ता है कि होनहार के आगे पौरुष की कुछ नहीं चलती । धिक्कार है मुझे, जो अपने बंधु-बांधवों और हित-मित्रों की मृत्यु का संवाद पाकर भी अब तक जीता जागता हूँ ! निश्चय ही मेरे प्राण वज्र की कीलों से जड़े हुए हैं, नहीं तो कभी के निकल गए होते । ”

उस रात को कौरवों के शिविर में दीपक नहीं जले—घोर अंधकार छाया रहा । ऐसा मालूम पड़ता था कि सारी प्रकृति वीर कर्ण की मृत्यु का शोक मना रही है । चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था—पहरेदारों तक को इतनी हिम्मत न पड़ती थी कि आवाज़ दे सकें । राजा दुर्योधन बिना नहाए-धोए, बिना कुछ भी मुँह में डाले दिन-भर के थके-माँदे होने पर भी शोक की अधिकता के कारण विषाद की मूर्ति बने हुए आँखों से आँसू बहाते रहे । रात-भर उनको नींद नहीं आई और न उन्होंने शय्या पर पैर ही रखा । उन्हें अपने भाइयों और प्यारे पुत्र लक्ष्मण तक की मृत्यु से इतना शोक नहीं हुआ था, जितना कर्ण के न रहने से हो रहा था । उस समय उन्हें

हस्तिनापुर के राज्य से भी अरुचि हो गई थी—वही राज्य जिसके लिये महाभारत रचा गया था और जिसे अपने अधिकार में रखने के लिये लाखों-करोड़ों वीरों की बलि देनी पड़ी। बचपन से लेकर आज तक की घटनाएँ एक एक करके उन्हें याद आने लगीं और वे बार-बार 'हाय कर्ण, हाय कर्ण' कहकर विलाप करने लगे।

मद्रराज्य शल्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा आदि अनेक हित-मित्र उन्हें सांत्वना देने के लिये वहाँ आ बैठे और आपस में यों बातें करते हुए कर्ण के गुणों का स्मरण करने लगे:—

कृपाचार्य—भीष्म और द्रोण के मरने पर भी मुझे इतनी निराशा नहीं हुई थी; क्योंकि उस समय महाबली कर्ण जीवित थे। कौन जानता था कि वे भी नाव को मँझधार में छोड़कर चल देंगे। सच है, मृत्यु से बली कोई नहीं।

शल्य—मुझे तो इस बात का पश्चात्ताप हो रहा है कि वीर कर्ण के मारे जाने में मैंने भी सहायता पहुँचाई। युद्ध आरंभ होने के पहले ही मैं युधिष्ठिर को वचन दे चुका था कि अगर कर्ण सेनापति होंगे, तो मैं उनका सारथी बनकर उन्हें बातों में लगाए रखूँगा, जिससे युद्ध की ओर से उनका ध्यान हट जाय। हाय मैं बड़ा पापी हूँ!

अश्वत्थामा—इसमें संदेह नहीं कि जैसा युद्ध आज हुआ, वैसा न कभी पहले हुआ होगा और न भविष्य में ही होने की आशा है।

शल्य—अगर धर्म-युद्ध होता रहता, तो अर्जुन कर्ण को कभी नहीं मार सकते थे। वे तो उस समय रथ से उतर-

कर कीचड़ में फँसा हुआ रथ का पहिया निकाल रहे थे—हाथ में कोई हथियार भी न था।

कृपाचार्य—पर अर्जुन ने ऐसा अधर्म क्यों किया? वह तो कभी पाप में फँसता नहीं।

शल्य—यह सब कृष्ण की शिक्षा का फल था। एक बार जब कर्ण को मूर्छा आ गई थी, तो अर्जुन ने अपना हाथ रोक लिया था। पर उस समय भी कृष्ण ने अर्जुन से यही कहा था—"यह क्या मूर्खता कर रहे हो?"

अश्वत्थामा—हमीं लोगों ने जब मिलकर अभिमन्यु को मारा था, तब धर्म का ख्याल कहाँ किया था?

कृपाचार्य—उस दिन अगर सब लोग मिलकर अभिमन्यु को न घेर लेते, तो वह किसी को भी जीता न छोड़ता।

अश्वत्थामा—वही बात आज भी हुई।

शल्य—और क्या, कर्ण ने अर्जुन की नाक में दम कर दिया था। ग्यारह बार तो उन्होंने गांडीव की प्रत्यंचा काट डाली थी। अर्जुन के चलाए हुए एक-से-एक बढ़कर दिव्य अस्त्र-शस्त्र उन्होंने विफल कर दिए थे। पर दैव प्रतिकूल था, इसी से मारे गए।

कृपाचार्य—सच है, नहीं तो क्या जान-बूझकर भी अपने सहजात कवच और कुंडल इंद्र को दे देते?

अश्वत्थामा—और इंद्र की दी हुई वह अमोघ-शक्ति भी तो घटोत्कच पर चला चुके थे। अगर वह आज होती, तो अर्जुन की जान न बचती।

कृपाचार्य—उस दिन तो कहो कि कृष्ण ने अर्जुन के प्राण बचा

लिए और घटोत्कच को कर्ण के सामने भेजकर मरवा डाला।

शल्य—और कृष्ण ने ही आज भी उनकी रक्षा की। जिस समय कर्ण ने नागास्त्र छोड़ा था, उस समय अगर कृष्ण अपना कौशल न दिखाते, तो अर्जुन किसी तरह भी न बचते।

अश्वत्थामा—कृष्ण ने क्या किया?

शल्य—किया क्या, जैसे ही कर्ण ने अर्जुन का सिर ताककर वह अस्त्र छोड़ा, वैसे ही उन्होंने घोड़ों को बैठाकर रथ को नीचा कर दिया। इसी से निशाना चूक गया।

कृपाचार्य—सच तो यह है कि अगर कृष्ण उनकी पीठ पर न होते, तो अर्जुन का आज पता भी न चलता।

शल्य—कर्ण कोई मामूली योद्धा न थे। अर्जुन के पास उनसे ज्यादा दिव्य अस्त्र-शस्त्र थे—फिर भी कर्ण ने कई बार उनके हाथ-पैर ढीले कर दिए थे, ऐसी कड़ी मार मारी थी।

कृपाचार्य—कर्ण अद्वितीय वीर थे। महाबली जरासंध को नाकों चने चबाने पड़े थे।

अश्वत्थामा—और क्या, अगर वह उस द्वंद्व-युद्ध में कर्ण की प्रशंसा न करने लग जाता, तो कर्ण उसे जीता थोड़े ही छोड़ते।

शल्य—कर्ण ने जैसी दिग्विजय की थी, वैसी भी तो आज तक किसी ने नहीं की।

कृपाचार्य—राजा भगदत्त और रुक्मी कोई साधारण योद्धा न थे, पर कर्ण के सामने उन्हें भी हार माननी पड़ी थी।

अश्वत्थामा—सबसे पहले तो उन्होंने अपनी वीरता काशी-

नरेश के यहाँ स्वयंवर में दिखाई थी, अकेले ही सब राजाओं के दाँत खट्टे कर दिए थे।

कृपाचार्य—मैं तो अस्त्र-परीक्षा के दिन ही समझ गया था कि कर्ण किसी से भी कम नहीं।

शल्य—निर्भीक तो वे ऐसे थे कि किसी को भी कुछ नहीं समझते थे।

कृपाचार्य—वीर का लक्षण भी यही है।

अश्वत्थामा—मेरा उनसे कई बार मतभेद हो चुका था, फिर भी मैं हृदय में उनकी शूर-वीरता और दान-वीरता का हमेशा कायल रहा।

शल्य—मुझे तो इसी का खेद है कि मैंने उनके मरने में सहायता पहुँचाई।

कृपाचार्य—अब सोच करना वृथा है। होनहार को कोई नहीं रोक सकता।

अश्वत्थामा—मेरी समझ में तो यह आता है कि अगर हम लोग वीरवर कर्ण की आत्मा को संतुष्ट करना चाहते हैं, तो कल के युद्ध में अर्जुन को मारकर दिखा दें।

निदान इसकी सलाह होने लगी कि अब किसे सेनापति बनाया जाय और अगले दिन किस ढंग से युद्ध किया जाय। आधी रात तक इसी तरह की बातें होती रहीं। उसके बाद कृपाचार्य आदि उठकर अपने डेरे में चले गए। पर दुर्योधन मूर्ति बने उसी तरह बैठे रहे—उन्हें कोरी आँखों सबेरा हुआ।

उधर पांडवों के डेरों में रात-भर आनंद-उत्सव मनाया गया। सोए उन लोगों में से भी बहुत-से नहीं, पर वह जागना

हर्ष का था—आनंद का था—विजय का था। यद्यपि कर्ण मारे अर्जुन के हाथ से गए थे—पर सब लोग अच्छी तरह जानते थे कि कृष्ण की सहायता के बिना यह असंभव था। अतएव धर्मराज ने कृष्ण की पूजा करके उनके प्रति अपनी अत्यंत कृतज्ञता प्रकट की। वे कहने लगे—"हे वासुदेव, हे जनार्दन, तुम्हें कहाँ तक धन्यवाद दें! किस तरह तुम्हारा गुणानुवाद करें! यह विजय तो क्या है, हम लोग तो अपना जीवन भी तुम्हारी ही कृपा का फल समझते हैं। हमारे क्या—सबके एकमात्र आधार तुम्हीं हो। तुम्हीं तक हमारी गति है—तुम्हीं से सब आशा है। इसलिये वारंवार यही प्रार्थना है कि सदा ऐसी ही कृपा-दृष्टि बनाए रखिए।"

कृष्ण ने हँसकर उत्तर दिया—"राजन्, यह सब तुम्हारे धर्माचरण का फल है—अर्जुन के पुरुषार्थ का फल है—मैंने इसमें कुछ भी नहीं किया। तुम पाँचों भाई एकमति हो और धर्म के पथ पर आरूढ़ हो। तुम्हारी सदा विजय है। दुर्योधन आदि का यह अपकर्ष उनके पापों का परिणाम है। ईश्वरीय विधान यही है। धर्म की हमेशा जीत होती है और पाप का परिणाम हमेशा दुःख होता है।"

अर्जुन बोले—"हाँ वासुदेव, यह तो सब ठीक है। पर इसमें संदेह नहीं कि अगर तुम उस समय घोड़ों को बैठाकर रथ को न झुका देते, तो उस नागास्त्र से मेरे प्राण न बचते। कहाँ तक कहूँ? अगर तुम्हारी कृपा न होती, तो मुझे पाशुपत अस्त्र किस तरह प्राप्त होता और मेरी जयद्रथ-वध की प्रतिज्ञा कैसे पूरी होती? उस समय भी तो तुम्हीं ने मेरे प्राण बचाए थे।

पर हो बड़े ही छलिया! कैसा तो सूर्य को छिपा लिया था! अगर थोड़ी देर अपनी माया न हटाते, तो मुझे चिता में जलना ही पड़ता।"

कृष्ण ने मुसकुराते हुए कहा—"इसीलिये तो एक अर्बुद नारायणी-सेना का लोभ छोड़कर तुमने मुझे स्वीकार किया था। तुम भी कुछ कम चालाक नहीं।"

इसी प्रकार की बातों में सवेरा हो गया और सब लोग तैयार होकर युद्धभूमि की ओर चल दिए।

अगले दिन के युद्ध में सेनापति का पद महाबली मद्रराज शल्य को दिया गया। युद्ध का अंत तो वास्तव में कर्ण की मृत्यु के साथ ही हो गया था—उस अट्ठारहवें दिन के युद्ध से कौरवों की रही-सही सेना भी नष्ट हो गई। धर्मराज युधिष्ठिर के हाथों शल्य की मृत्यु हुई।

उपसंहार

जब युद्ध बिल्कुल समाप्त हो गया, तब पांडवों को पता चला कि कर्ण उनके भाई थे। युधिष्ठिर को अत्यंत शोक हुआ, पर अब क्या होता? मरा हुआ तो कोई लौटकर आ नहीं सकता। पर उन्हें आश्चर्य इस बात पर हुआ कि उनकी माता कुंती इतने दिनों तक यह भेद छिपाए रहीं। खैर, उन्होंने बड़े आदर-सम्मान से वीरवर कर्ण की अंत्येष्टि-क्रिया की और इस प्रकार उनके प्रति अपना कर्तव्य पूरा किया।

कर्ण की जीवनी इस बात का उदाहरण है कि दुष्टों की संगती से कभी कल्याण नहीं हो सकता।